विषय क्रम

- xkWo'kh; i'kqvksa dh n[kHkky ,oa çcUèku — 50&55
  xkSjo tSu] MkW jkeikyk Çlg ,oa MkW uhjt
- Tkyok;q ifjorZu ,oa vlarqyu —f"k rduhfd;k¡ — 56&60
  Mk- f'ko iwtk fo'odekZ
- Hkkjrh; xkWo'k @ ns'kh xk; dh mi;ksfxrk ,oa egRrk — 61&65
  MkW nsoUnz Lo:Ik ,oa MkW gseyrk iUr
- jtuhxa/kk dh oSKkfud [ksrh — 66&67
  Mk-euksat dqekj flag
- fuikg ok;jl ls lØe.k dk y{k.k ,oa cpko — 68
  Mk[ke tSl Çlg] xkSjo tSu ,oa vftr Çlg
- cPpksa esa iks"k.k dk egRo — 69&72
  MkW 'kf'k flag ,oa MkW ugk f=ikBh
- eqxhZ ikyu dks jkstxkj ls cpkus gsrq mfpr izcU/ku — 73&75
  xkSjo tSu] MkW jkeikyk Çlg ,oa MkW uhjt
- xsna dh [ksrh vkj Qly dk vk"k/kh; xq.k — 76&79
  Mk- vpyuk mn; flag
- Vid flapkbZ % ik;kx ,oa ykHk — 80&81
  Mk- euksat dqekj flag
- vf/kd nw/k mRiknu gsrq lk"kqvksa dh n[k&js[k — 82&83
  MkW deys'k flag
- Xkkan dzhjk ds Qk;ns ,oa mi;ksx — 84&85
  fjpk flag] vkyksd dqekj eks;kZ ,oa uUnuh flag
- Hksal ikyu esa lQyrk gsrq egRoiw.kZ rF; — 86&87
  MkW deys'k flag
- ,fo;u ,U¶yq,Utk ¼cMZ ¶yw½ — 88&89
  vftr Çlg] Mk[ke tSl Çlg ,oa xkSjo tSu
- /kfu;k dh oSKkfud [ksrh — 90&91
  Mk- euksat dqekj flag
- Cknyrs ifjn"; esa nsljh gfjr Økafr dh vko';drk — 92&96
  Mk- f'ko iwtk fo'odekZ
- ,ykoqjk dh [ksrh — 97&99
  Mk- lq;Z ukjk;.k
- tSo fofo/krk% ifjp; egÙo rFkk lja{k.k — 100&102
  MkW gseyrk iUr ,oa MkW T;ksfr oekZ

विषय क्रम

- fo/kk;u dj chtksa dh xq.koRrk c<+k;sa — 103&105
  dkS'ky dqekj] iznhi dqekj ,oa fo|klkxj
- ewyh dh oSKkfud [ksrh — 106&108
  Mk- eukst dqekj flag
- gYnh dh O;olkf;d [ksrh ,oa Qly lqj{kk — 109&116
  Mk- iznhi dqekj] Mk- fo?kk lkxj ,oa Mk- dkS'ky dqekj eks;Z
- Qly lqj{kk esa fNM+dko dh mi;ksfxrk o dk;Z iz.kkyh — 117&119
  dkS'ky dqekj eks;Z] iznhi dqekj ,oa jketh
- xzh"edkyhu lfCt;ksa dh [ksrh ls ykHk — 120&121
  MkW0 gqeyrk iUr ,oa MkW0 Mh- ds- JhokLro
- de ykxr esa Qly lqj{kk — 122&129
  MkW0 iznhi dqekj] MkW0 dkS'ky dqekj ,oa MkW0 jke th
- dk;ZØe lwph & 1 — 130
  MkW0 xksiky ik.Ms; Le`fr O;k[;ku ekyk lEiUu
- dk;ZØe lwph & 2 — 131&132
  nks fnolh; jk"Vªh; laxks"Bh dk 'kqHkkjEHk

सम्पादकीय !

भारत एक कृषि प्रधान देश है। और देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एंव कृषि पर आधारित व्यवसायों से जुडी है। लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या एवं घट़ती हुई कृषि भूमि एवं लागातार बढ़ते हुये उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की उर्वरता में कमी आयी है। अनुमानतः वर्ष 2020 मे हमे लगभग 50 करोड़ टन खाद्यान की आवश्यकता होगी इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए खाद्यान्न उत्पादन प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत की दर से वृद्धि करनी होगी। वर्तमान मे यह वृद्धि दर 3 प्रतिशत के आसपास है। अतः प्रस्तावित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मृदा उर्वरता को बढ़ाना होगा साथ ही संतुलित रासायनिक खादों एंव जैविक खादों की उपयोगिता पर विशेष वल देना होगा एवं किसानों को जैविक खादो के उपयोग एंव महत्व को समझाना होगा तभी उत्पादन में वृद्धि सम्भव हो सकेगी।

हमारा देश साठवें दशक के उत्तरार्ध एवं सत्तरवें दशक के प्रारम्भ में कृषि में हरित क्रान्ति का गवाह रहा है। इस हरित क्रान्ति में अधिक उपज देने वाली प्रजातियों का प्रयोग, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग तथा सिंचाई के संसाधनों मे तेजी से विस्तार की अग्रणी भूमिका रही। इस क्रान्ति के कारण देश भुखमरी की स्थिति से उबरकर खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना। हरित क्रान्ति का प्रार्दुभाव अमेरिका के वैज्ञानिक 'नार्मन अर्नेस्ट बोरलाग' की अगुआई में कृषि में हुए शोध, विकास एवं तकनीकी हस्तान्तरण के द्वारा सम्भव हो पाया। इस प्रयास में अपने देश के महान कृषि वैज्ञानिक 'डॉ0 एम0एस0 स्वामीनाथन' का अविस्मरणीय येागदान रहा। अधिक उपज वाली उन्नतशील किस्मों का विकास तथा आधुनिक कृषि तकनीकियों का किसानों द्वारा प्रयोग करने एवं सरकार द्वारा इनके लिए प्राथमिकता देने के कारण देश के हजारों लोगों को भुखमरी की स्थिति से बचाया जा सका। मैक्सिको एवं भारतीय उपमहाद्वीप में खाद्याान्न आपूर्ति सुनिश्चित कर विश्व शांति स्थापित करने में किये गये महत्वपूर्ण योगदान के लिए वर्ष 1970 में नार्मन बोरलाग को शान्ति के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार दिया गया। यह क्रान्ति मुख्य रुप से अधिक अन्न उत्पादन पर आश्रित रही जिसमें फसलों की उत्पादकता में औसतन दो से चार गुना बढ़ोत्तरी हुई और देश ने कृषि क्षेत्र में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की जिससे देश भुखमरी की स्थिति से निपटने में पूरी तरह सफल रहा।

हमारी जनसंख्या के भरण–पोषण की आपूर्ति हेतु कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु विभिन्न प्रकार के रसायनिक खादों, उर्वरकों, कीटनाशकों, फफूँदीनाश्कों, कीड़कनाशकों आदि का बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग हो रहा है जो हमारी मृदा ही नही वरन् हमारे पशु व पशुपक्षियों के स्वास्थ्य, साथ हमारे पर्यावरण पर भी विपरीत प्रभाव डाल रहा है । इन्हीं प्रभावों को ध्यान में रखते हुए हमारी पत्रिका के कुछ लेख जैसेः कृषि रक्षा रसायनों का सही प्रयोग एवं खाद्य पदार्थों में पाये जाने वाले

रासायनिक कीटनाशकों के अवशेषों के प्रति सजग रहें एवं 'प्राकृतिक कार्बनिक अवशिष्ट समाधि खाद्य की कृषि में उपयोगिता एवं महत्व' तथा 'एन.पी.पी.–स्थायी कीट प्रबन्धन शक्तिशाली कीटनाशक' के साथ जलवायु परिवर्तन एवं अद्यतन कृषि तकनीकियां जैसे लेखों को सम्मिलित किया गया है ।

बढ़ती आबादी की पोषकता पूर्ति के लिए अब हम सबको गेहूँ तथा धान उत्पादन की आधुनिक उन्नत तकनीकियों के साथ ही बहुत से अन्य गुणकारी और पोषक गुणों से भरपूर भोज पदार्थों को अपने आहार में शामिल करना पड़ेगा तभी हम खाद्यान्न और पोषण दोनों की पूर्ति करने में सफल हो सकते हैं । इस तरह का ध्यान खींचने के लिए खाद्यान्न और पोषण सुरक्षा हेतु चुकन्दर, मूली, सूरन, अदरक, धनिया ग्रीष्म कालीन सब्जियों की खेती व उनसे होने वाले लाभ जैसेः लेख आपको आकृष्ट करेंगे ।

किसान भाईयों को अपनी आय बढ़ाने हेतु गम्भार, सागौन, हल्दी, एलोवेरा, रजनीगन्धा की खेती व अन्य जानकारी को स्थान दिया गया है । 'कम लागत में फसल सुरक्षा कैसे की जाये, फसल सुरक्षा में छिड़काव की उपयोगिता व कार्यप्रणाली क्या हो' विधायन कर बीजों की गुणवत्ता कैसे बढ़ायी जाये सरीखे लेख भी हैं हमारे इस अंक में इस बार ।

हमारे इस अंक में 'प्राचीन काल से वर्तमान तक पशु विज्ञान शिक्षा के सफरनामे की एक समीक्षा भी की गयी है', इसके साथ ही साथ 'भारतीय गोवंश की उपयोगिता व महत्व, गोवंशीय पशुओंकी देख–भाल व उनका प्रबन्धन', 'भैंस पालन हेतु जानकारी एवं अधिक दूध उत्पादन' हेतु पशुओं के देख–रेख सम्बन्धी लेख सहित 'मुर्गी पालन की जानकारी', 'एवीएन इन्फलूएन्जा व निपाह वायरस' का वर्णन भी किया गया है । कृषि में सिंचाई के महत्व को देखते हुए 'टपक सिंचाई' व उससे लाभ, 'अजोला' के विषय में तथा 'बच्चों में पोषण के महत्व' सम्बन्धी लेखों को स्थान दिया गया है ।

इस बार ग्रामीण विकास सन्देश के इस संयुक्तांक में कुल 35 लेखों को समावेशित किया गया है । मैं ग्रामीण विकास सन्देश के इस अंक की रचना हेतु उन सभी लेखक तथा लेखिकाओं को धन्वाद देती हूँ जिन्होंने अपने अमूल्य समय से कुछ पल निकालकर अपने सारगर्भित तथा ज्ञानवर्धक लेखों को हमारी पत्रिका में भेजने की रूचि दिखाई । उम्मीद करती हूँ कि इस पत्रिका का यह संयुक्तांक आप सभी सुविज्ञ पाठकों का रूचिकर लगेगा ।

आशा है कि इस अंक से निकला ज्ञान रूपी प्रकाश पुन्ज कृषि तथा ग्रामीण विकास हेतु एक दीपक की भाँति अवश्य आभा प्रसारित करेगा । इस पत्रिका और अधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी बनाने हेतु आप सभी सुधि पाठकों के महत्वपूर्ण सुझावों की मुझे सतत् आवश्यकता रहेगी ।

– सम्पादक

गेहूँ उत्पादन की आधुनिक उन्नत तकनीकियाँ

ए. एस. यादव
वैज्ञानिक अधिकारी
उ.प्र. कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ, (उ.प्र.)

भारत विश्व में दूसरा सबसे बड़ा गेहूँ उत्पादक देश है तथा राष्ट्रीय खाद्यान्न उत्पादन में इसका योगदान लगभग 34 प्रतिशत है। वर्ष 1964–65 में गेहूँ का उत्पादन 12.3 मिलियन टन था जो 2015–16 में बढ़कर 93.50 मिलियन टन हो गया है। जलवायु, मिट्टी एवं स्थानीय परिस्थतियों के आधार पर भारत को गेहूँ उत्पादन की दृष्टि से उत्तरी पर्वतीय, उत्तर–पश्चिमी मैदानी, उत्तर–पूर्वी मैदानी, मध्य क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, दिल्ली, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू–कश्मीर के जम्मू और कठुआ जनपद एवं हिमाचल प्रदेश का ऊना जनपद एवं पोंटा घाटी शामिल है। यह देश का सबसे अधिक गेहूँ उत्पादन करने वाला क्षेत्र है। भारत की खाद्य सुरक्षा मुख्यतः इसी क्षेत्र पर निर्भर रहती है।

उत्तरी–पूर्वी मैदानी क्षेत्र में पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम एवं उत्तर–पूर्वी राज्यों के मैदानी भाग शामिल हैं। इस क्षेत्र में गेहूँ की उत्पादकता उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की तुलना में कम है। इस क्षेत्र में गेहूँ के उत्पादन को बढ़ाने की अपार संभावनायें हैं अतः अच्छी पैदावार के लिए कृषकों को गेहूँ की उन्नत खेती पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

मध्य क्षेत्र में मध्य प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़, राजस्थान का कोटा एवं उदयपुर संभाग एवं उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र शामिल है। मध्य क्षेत्र की औसत उत्पादकता उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र की तुलना में बहुत कम है। इस क्षेत्र में पैदा होने वाला गेहूँ गुणवत्ता के दृष्टिकोण से उत्तम होता है। बाजार में इस क्षेत्र के गेहूँ की सबसे अधिक मांग होने के कारण अच्छा मूल्य भी मिलता है। कठिया गेहूँ का सर्वाधिक उत्पादन मध्य क्षेत्र में ही होता है, जिसका प्रयोग सूजी, दलिया, पास्ता, नूडल, मैकरोनी इत्यादि उत्पादों को बनाने के लिये किया जाता है।

प्रायद्वीपीय क्षेत्र में कर्नाटक एवं महाराष्ट्र के गेहूँ उत्पादन क्षेत्र शामिल है। यद्यपि इस क्षेत्र में गेहूँ की उत्पादकता अन्य प्रमुख क्षेत्रों की तुलना में कम है, किन्तु यहां पर चपाती गेहूँ के अतिरिक्त, कठिया एवं खपली गेहूँ का उत्पादन भी किया जाता है। जो उच्च गुणवत्ता युक्त होती है। उत्तरी और दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्रों में कम क्षेत्रफल में गेहूँ की खेती की जाती है।

खेत की तैयारी

गेहूँ की अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिये खेत को अच्छी तरह से तैयार करना चाहिये। पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करने के पश्चात् कल्टीवेटर/हैरो से दो बार जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बनाकर ही बीज की बुवाई करना उचित होगा।

प्रजाति का चयन

कुछ किसान अभी भी पुरानी किस्मों की बुवाई कर रहे हैं जिनकी उत्पादकता काफी कम है। ऐसी स्थिति में अधिक पैदावार लेने के लिए कृषकों को क्षेत्र विशेष की परिस्थिति के अनुसार संस्तुत की गई उच्च उत्पादकता व रोगरोधी उन्नत किस्मों को बोना चाहिये। जहाँ एक तरह नई किस्मों को लगाने से किसानों को अच्छी उपज मिलेगी वहीं दूसरी तरह रोग भी कम लगेंगे।

बीज दर, बीज शोधन एवं बुवाई

सामान्य दशा में पंक्ति में बुवाई करने पर 40 कि.ग्रा./एकड़ बीज की आवश्यकता होती है। यदि दाना मोटा है तो 50 कि.ग्रा./एकड़ बीज की आवश्यकता होगी। बुवाई से पहले बीज का अंकुरण प्रतिशत अवश्य देख लें, यदि अंकुरण क्षमता कम हो तो उसी के अनुसार बीज की मात्रा बढ़ा लें।

बीजजनित रोगों की रोकथाम के लिये कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत डब्लू.पी.की 2 ग्राम अथवा कार्बाक्सिन 75 प्रतिशत डब्लू.पी. की 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिये।

बुवाई हल के पीछे कूड़ों में या फर्टीसीडड्रिल द्वारा उचित नमी पर करें। पंक्ति से पंक्ति की दूरी–18 से 20 से.मी. तथा बीज को 4 से 5 से.मी. गहराई पर बोयें, जिससे जमाव अच्छा होता है।

संसाधन संरक्षण तकनीक

संसाधन संरक्षण तकनीकों जैसे– रोटरी टिलेज, मेंड़ पर बुवाई तथा सतही बुवाई आदि से पहले खेतों का समतल होना जरूरी है क्योंकि समतल खेत में मशीन द्वारा बुवाई आसान होती है। खेतों को समतल करने की नई तकनीक लेजर लैंड लेवलिंग है। लेजर विधि एक नई वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें एक विशेष उपकरण द्वारा खेत की मिट्टी को समतल किया जाता है। सामान्यतः 01 एकड़ खेत को समतल करने में 2–3 घंटे का समय लगता है।

लाभः–

- इस तकनीक से 20 प्रतिशत पानी की बचत होती है तथा पानी लगाने में समय की भी बचत होती है।

- सिंचाई करने के लिए मेंड़, नालियां आदि बनाने में खेत का कुछ हिस्सा चला जाता है। समतल करने के बाद 3–4 प्रतिशत क्षेत्र खेती में आ जाता है।
- इस तकनीक से लगभग 5–10 प्रतिशत की अतिरिक्त उपज मिल जाती है।

जीरो टिलेज (शून्य जुताई)

धान–गेहूँ फसल पद्धति में जीरो टिलेज तकनीक से गेहूँ की बुवाई एक कारगर एवं लाभदायक तकनीक है। इस तकनीक से धान की कटाई के बाद मृदा में संरक्षित नमी का उपयोग करते हुए जीरोटिल ड्रिल से गेहूँ की बुवाई बिना जुताई के की जाती है। उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र जहां पर धान की कटाई देरी से होती है। यह मशीन काफी कारगर सिद्ध हो रही है। जल भराव वाले क्षेत्रों में भी इस मशीन की काफी उपयोगिता है।

लाभः–

- समय, श्रम व ईधन पानी की बचत। लगभग 1000 रू/एकड की बचत कर सकते है।
- एक घंटे में इस मशीन से 01 एकड़ खेत की बुवाई संभव है।
- इस विधि से 5–10 प्रतिशत अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।
- फसलों की 7–10 दिन पहले बुवाई संभव है। पछेती बुवाई में समय की बचत का विशेष महत्व है।
- खरपतवार का प्रकोप कम होता है। विशेषकर गेहूँसा का प्रकोप कम देखा गया है।
- इस तकनीक के लगातार अंगीकरण से मृदा के भौतिक एवं जैविक गुणों में भी सुधार होता है। जमीन मे उपस्थित कार्बनिक पदार्थ एवं इसके ऊपर निर्भर लाभकारी सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।
- यह विधि पर्यावरण के लिए भी लाभकारी है क्योंकि इस विधि द्वारा बुवाई करने से डीजल की खपत कम होती है जिससे वायुमंडल में कार्बन डाईऑक्साइड का उत्सर्जन कम होता है।
- जीरो टिलेज से बुवाई करने पर गेहूँ की गुणवत्ता पर भी लाभकारी प्रभाव देखने को मिला है। इस तकनीक से बुवाई करने से दानों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है तथा करनाल बंट भी कम होता है।

हैप्पी या टर्बोसीडर (शून्य जुताई)

यह मशीन मूलतः जीरो टिलेज तकनीक के सिद्धांत पर काम करती है। इस मशीन द्वारा धान

की कटाई के बाद ज्यादा मात्रा में पुआल पड़े होने के बावजूद भी बुवाई की जा सकती है। किसानों द्वारा खेत में पुआल को जलाने से रोकने में यह मशीन काफी कारगर है। इसके अंगीकरण से संसाधनों की बचत होती है।

लाभः–

- इस तकनीक से श्रम, पूंजी, समय, पानी, डीजल आदि की बचत होती है।
- मृदा की जल अवशोषण क्षमता बढ़ जाती है तथा दीर्घ अवधि तक नमी संरक्षित रहती है।
- अधिक उपज प्राप्त होती है।

रोटरी टिल ड्रिल

इस तकनीक द्वारा गेहूँ की बुवाई एक विशेष प्रकार की मशीन से की जाती है जो एक बार में ही खेत की जुताई करती है, बीज व खाद भी डालती है और अंततः पाटा भी लगाती है। इस तकनीक से अच्छी उपज प्राप्त होती है।

लाभः–

- इस तकनीक से समय, पूंजी, श्रम व डीजल की बचत होती है।
- इस तकनीक को अपनाने से लगभग 1000 रू./एकड़ की बचत हो जाती है।

मेड़ पर बुवाई

इस तकनीक में गेहूँ की बुवाई के लिए खेत पारंपरिक तरीक से तैयार किया जाता हैं। उसके बाद बेड प्लांटर नामक मशीन से गेहूँ की मेड़ 2–3 पंक्ति में बुवाई की जाती है। इस तकनीक से 70–75 से.मी. की दूरी पर मेंड़ बनाई जाती है, जिसमें मेड़ की चौड़ाई 35–40 से.मी. तथा नाली की चौड़ाई 30–35 सें.मी. रखी जाती है। इस विधि से बोई गई गेहूँ के साथ गन्ना को अन्तः फसल के रूप में नालियों में उगाया जा सकता है।

लाभः–

- इस विधि से पानी (20-30%) एवं बीज तथा खाद में (15-20%) की बचत होती है।
- अधिक वर्षा होने पर नालियों से जल निकासी आसानी से संभव है।
- खरपतवार का प्रकोप कम होता है। साथ ही खरपतवारों का यांत्रिक प्रबंधन भी संभव है।
- दाने बड़े आकार के बनते हैं। इस विधि को बीज उत्पादन में प्रयोग किया जा सकता है।

रोटरी डिस्क ड्रिल

यह एक ऐसी मशीन है जो बिखरे पड़े फसल अवशेषों में सीधी बुवाई के लिए बनाई गई है। इस

मशीन में लगे तवे/डिस्क बचे हुए डंठलों को काटते हुए बुवाई कर देते इस विधि से बोई गई गेहूँ के भी गिरने की संभावना कम रहती है। जमीन में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ जाती है। फसलों के अवशेषों का भूमि की सतह पर रखने से नमी तो बनी ही रहती है साथ ही खरपतवार एवं दीमक की समस्या भी कम होती है।

खाद एवं उर्वरक

उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना उचित होता है। अच्छी प्रकार की सड़ी हुई गोबर की खाद 24 कु./एकड़ का प्रयोग करें। सामान्य दशा में गेहूँ की अच्छी पैदावार के लिये 60:24:16 कि.ग्रा./एकड़ नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश की संस्तुति की जाती है।

जिन क्षेत्रों में डी.ए.पी. का प्रयोग लगातार किया जा रहा है उनमें 12 कि.ग्रा./एकड़ गंधक का प्रयोग लाभदायक रहेगा। खड़ी फसल में यदि जिंक की कमी के लक्षण दिखाई दे तो 2.0 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट तथा 6 कि.ग्रा. यूरिया को 300 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। यदि यूरिया की टापड्रेसिंग की जा चुकी है तो यूरिया के स्थान पर 1.0 कि.ग्रा. बुझे हुये चूने के पानी में जिंक सल्फेट घोलकर छिड़काव करें।

सिंचाई

सामान्यतः गेहूँ की फसल के लिए 3–6 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पानी की उपलब्धता एवं पौधों की आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। जीरो टिलेज से बुवाई करने पर पहली सिंचाई पारम्परिक तरीके की तरह ही देनी चाहिए। मेंड़ पर बुवाई की पद्धति में यदि नमी कम हो तो अच्छे जमाव के लिए हल्की सिंचाई बुवाई के तुरंत बाद दे देनी चाहिए।

सिंचाई	अवस्था	सिंचाई का समय (दिनों में)
1	ताजमूल	20–25
2	कल्ले निकलते समय	40–45
3	गांठ बनते समय	60–65
4	पुष्पावस्था	80–85
5	दुग्धावस्था	100–105
6	दाना भरते समय	115–120

नोट–यदि 3 सिंचाइयों की सुविधा उपलब्ध हो तो ताजमूल, बाली निकलने के पूर्व तथा दुग्ध अवस्था पर करें।

खरपतवार प्रबंधन

हमेशा खरपतवार रहित गेंहूँ के बीज का उपयोग करें। खरपतवारनाशी की सही मात्रा, सही समय व उपयुक्त तकनीक द्वारा स्प्रे करें। स्प्रे करने के लिए फ्लैट फैन नोजल का प्रयोग करें।

सकरी पत्ती वाले खरपतवारों के लिये	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिये	सकरी एवं चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के लिये
फिनोक्साप्राप–पी–इथाइल 10 प्रतिशत ई .सी. की 400 मिली/एकड़	कारफेन्ट्राजॉन इथाइल 40 प्रतिशत डी .एफ. की 20 ग्राम/एकड़	पेण्डीमेथलीन 30 प्रतिशत ई .सी. की 1.32 ली./एकड़ बुवाई के 3 दिन बाद
क्लोडिनाफाप प्रोपैरजिल 150 प्रतिशत डब्लू.पी. की 160 ग्राम/एकड़	मेट सल्फ्यूरान मिथाइल 20 प्रतिशत डब्लू.पी. 8 ग्राम/एकड़	सल्फोसल्फ्यूरान 75 प्रतिशत डब्लू.पी. की 13.2 ग्राम/हे . बुवाई के 20–25 दिन बाद
		मैट्रीब्यूजिन 70 प्रतिशत डब्लू .पी. की 100 ग्राम/एकड़ बुवाई के 20–25 दिन बाद।

गेहूँ की अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिये महत्तवपूर्ण बिन्दु

- खेत की तैयारी के लिये रोटावेटर/हैरो/कल्टीवेटर का प्रयोग करें।
- क्षेत्र विशेष के लिये संस्तुत प्रजाति का चयन करके शुद्ध/प्रमाणित एवं शोधित बीज का ही प्रयोग करें।
- संभव हो सके तो पोषक तत्वों की आधी मात्रा जीवांश खादों से दी जाये।
- उर्वरकों का प्रयोग संतुलित मात्रा में मृदा परीक्षण के आधार पर सही समय पर तथा उचित विधि से किया जाये।
- सिंचन क्षमता का भरपूर उपयोग करते हुये फसल की क्रांतिक अवस्थाओं यथा ताजमूल अवस्था, कल्ले निकलते समय एवं पुष्पावस्था, दुग्धावस्था पर सिंचाई समय से उचित विधि एवं मात्रा में की जाये।
- खरपतवारों के नियंत्रण हेतु रसायनों को संस्तुति के अनुसार सामयिक प्रयोग करें।
- कीट–रोग व्याधियों से फसल के बचाव हेतु प्रक्षेत्र का समय–समय पर निरीक्षण करते रहे तथा उचित समय पर एकीकृतनाशी जीव प्रबंधन करें।

पहाड़ी क्षेत्रों में अदरक की वैज्ञानिक खेती

अनिल कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर/जूनियर साइंटिस्ट, हाई माउंटन एरिड एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट, शेर–ए–कश्मीर यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, लेह – 194191

भारत में उगाई जाने वाली मसालों की फसलों में अदरक (जिन्जीवर आफीसिनेल) का प्रमुख स्थान है। प्राचीनकाल से इसका उपयोग मसाले के रूप में साग–भाजी, सलाद, चटनी, अचार और विभिन्न प्रकार की भोजन सामग्रियों के निर्माण एवं नाना प्रकार की औषधियों के निर्माण में होता है। इसे सुखाकर सौंठ बनाई जाती है। आजकल अदरक की खेती का विस्तार तीव्र गति से हो रहा है, क्योंकि अन्य फसलों की तुलना में अदरक की खेती अधिक लाभप्रद पायी गई है।

भारत से कच्चे अदरक और सौंठ का प्रतिवर्ष अरब, अमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, मास्को और अन्य देशों को निर्यात किया जाता है। कुल उपज का लगभग 15 प्रतिशत भाग भारत से निर्यात होता है, जिससे बहुमूल्य मुद्रा प्राप्त होती है।

उत्पत्ति एवं वितरण (Origin and Distribution)– अदरक की उत्पत्ति दक्षिणी–पूर्वी एशिया मानी जाती है। इसके उत्पादन का बहुत बड़ा भाग केरल से प्राप्त होता है। केरल के अलावा असम के मिजोरम और गारो पहाड़ी क्षेत्रों, उत्तर प्रदेश के बरुआ सागर (झाँसी के समीप), कुमाऊँ व गढ़वाल की पहाड़ियों, तराई और भावर और चकरोता, देहरादून क्षेत्रों, तमिलनाडु आन्ध्र प्रदेश के कुछ भागों में उगायी जाती है। विश्व की लगभग आधी अदरक भारत में ही उत्पन्न होती है।

पोषक मूल्य (Nutritive Value)– अदरक से प्राप्त होने वाले पोषक तत्व निम्नलिखित है–

अदरक (प्रति 100 ग्राम खाद्यांश)			
प्रोटीन	2.3 ग्राम	रिबोफ्लेविन	0.6 मि0 ग्राम
वसा	0.9 ग्राम	निकोटीनिक अम्ल	0.6 मि0 ग्राम
रेशा	2.4 ग्राम	विटामिन 'सी'	6.0 मि0 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	12.3 ग्राम	विटामिन 'ए'	6.7 आई0यू0
विटामिन	0.06 मि0 ग्राम		

किस्में (Varieties)–

अदरक की किस्मों को वानस्पतिक भागों की वृद्धि, गाँठ के रंग–रूप एवं उसमें उचित रेशों के आधार पर विभाजित करते हैं। आमतौर पर अदरक की स्थानीय किस्में ही उगाई जाती हैं, जिनसे उपज तो कम मिलती ही है साथ ही अदरक की गुणवत्ता निम्न कोटि की होती है। अब इसकी उन्नत किस्में उपलब्ध हैं। मरान, नाडिया, वाजपेयी, वाइनाड, बरुआ सागर, कोचीन, वर्द्धमान, चायना, रियो–डी–जेनेरिओ, थंग पूरी, कालीकट, नसारा, पटनम, कोचीन प्रमुख किस्में हैं जो देश के विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। इनमें से सर्वाधिक उपज रियो–डी–जेनेरिओ किस्म से मिलती है, परन्तु इससे सौंठ कम मात्रा में मिलती है। सौंठ के लिये कोचीन और कालीकोट किस्में उत्तम पायी गई हैं।

नवीनतम किस्में–

सुप्रभा– इस किस्म के फुटाव अधिक होता है। इसके प्रकंद लम्बे, अण्डाकार सिरों वाले, चमकीले भूरे रंग के होते हैं। जिनमें रेशा 4.4 प्रतिशत, तेल 1.9 प्रतिशत, ओलेरिओसिन 8.91 प्रतिशत होता है। यह किस्म पर्वतीय क्षेत्रों के लिये अति उत्तम है।

सुरूचि– यह एक अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसके प्रकंद हरापन लिये पीले रंग के होते हैं, जिनमें रेशा 3.8 प्रतिशत, तेल 2 प्रतिशत और ओलेरिओसिन 10.0 प्रतिशत होता है। इसमें रोग कम लगते है।

सुरभि– इस किस्म को उत्परिवर्तन (म्यूटेशन) से विकसित किया गया है, यह एक अधिक उपज देने वाली किस्म है। इसके प्रकंदों में रेशा 4 प्रतिशत, तेल 2.1 प्रतिशत पाया जाता है। प्रकंद अधिक संख्या में बनते हैं, जिनका छिलका गहरे चमकीले रंग का होता है।

जलवायु (Climate)– अदरक वैसे तो गर्म तर जलवायु का पौधा है, परन्तु हिमाचल प्रदेश में इसकी खेती समुद्र तल से 1500 मीटर की ऊँचाई तक के स्थानों पर सफलापूर्वक की जा सकती है। अदरक के लिये ऐसे स्थान सर्वोत्तम होते हैं, जहाँ नम वातावरण हो, फसल की वृद्धिकाल में 50–50 सेमी0 वार्षिक वर्षा हो, भूमि में पानी नहीं ठहरता हो और हल्की छाया हो। पुराने आम के बागों की भूमि का उपयोग अदरक की खेती के लिये कर सकते हैं।

भूमि और उसकी तैयारी (Soil and Its Preparation)– अदरक की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है, लेकिन उचित जल निकास वाली दोमट या रेतीली दोमट भूमि इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम होती है।

अप्रैल–मई में मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करनी चाहिए और उसके उपरान्त 4–5

जुताइयाँ देशी हल से करके पाटा चलाकर मिट्टी को भुर–भुरा एवं समतल कर लेना चाहिए।
सूत्रकृमि से बचाव के लिए बुवाई से पूर्व मिट्टी में थिमेट –10जी (10–15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) दवा अवश्य मिलानी चाहिए।

बोने का समय (Time of Sowing)– अदरक की बुवाई क्षेत्र विशेष मौसम के अनुसार मई–जून में की जाती है। जहाँ पर सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो वहाँ पर इसकी बुवाई अप्रैल–मई के मध्य तक करनी चाहिये। परन्तु जहाँ पर वर्षा आधारित फसल उगानी हो, वहाँ पर पहली वर्षा के ठीक बाद बुवाई करनी चाहिए। बुवाई के समय का उपज पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

बोने की विधि (Method of Sowing)– बीज कंदों को बोने से पूर्व 0.25 प्रतिशत डाइथेन एम–45 और बैविस्टीन (0.1 प्रतिशत) के मिश्रित घोल में एक घन्टे तक डुबाना चाहिए। फिर एक–दो दिन छाया में सुखाने के बाद इन्हें 4 सेमी0 की गहराई में भूमि में दबा देते हैं। पंक्तियों की आपसी दूरी 25–30 सेमी0 और पोधों की आपसी दूरी 15–25 सेमी0 रखते हैं। बीज प्रकंदों को मिट्टी से भली–भाँति ढँक देना चाहिए।

बुवाई के तुरन्त बाद ऊपर से घास– फूस, पत्तियों व गोबर की खाद से भली–भाँति ढक देना चाहिए। ऐसा करने से मिट्टी के अन्दर नमी बनी रहती हैं और तेज धूप के कारण अंकुरण पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

खाद और उर्वरक (Manure and Fertilizer)– अदरक की फसल के लिये कितना खाद व उर्वरक होना चाहिए, इसका पता लगाने के लिये मृदा–जाँच अनिवार्य है। यदि मृदा–जाँच न हो सके तो उस स्थिति में प्रति हेक्टेयर निम्न मात्रा में खाद और उर्वरकों का उपयोग करें।

गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद – 22–25 टन
नाइट्रोजन – 100 किलोग्राम
फॉस्फोरस – 75 किलोग्राम
पोटाश – 100 किलोग्राम

गोबर की खाद या कम्पोस्ट को भूमि की तैयारी से पूर्व खेत में समान रूप से डालकर मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करनी चाहिये। फास्फोरस, पोटाश और नाइट्रोजन को बुवाई के 50–60 दिन बाद खेत में डालकर मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए।

सिंचाई (Irrigation)– अदरक की फसल में भूमि में बराबर नमी बनी रहनी चाहिए। पहली सिंचाई बुवाई के कुछ दिन बाद ही करते हैं और जब तक वर्षा प्रारम्भ न हो जाए, 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहते हैं। गर्मियों में प्रति सप्ताह सिंचाई करनी चाहिए।

निराई–गुड़ाई (Hoeing and Weeding)– अदरक के खेत को खरपतवाररहित रखने और मिट्टी को भुरभुरी बनाये रखने के लिये आवश्यकतानुसार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। अदरक की फसल अवधि में 2–3 बार निराई–गुड़ाई करना पर्याप्त होता है। प्रत्येक गुड़ाई के उपरान्त मिट्टी अवश्य चढ़ायें।

पलवार (Mulching)– पत्तियों का पलवार देने से अंकुरण अच्छा होता है और खरपतवार भी कम उगते हैं। तीन बार पलवार देने से अधिकतम उपज मिलती है। 5000 किलोग्राम हरी पत्तियों का पलवार बुवाई के तुरन्त बाद, इतनी ही पत्तियों का पलवार 30 दिन व 60 दिन के बाद देते हैं, जब पौधे 20–25 सेमी0 ऊँचे हो जायें तो उन पर मिट्टी चढ़ा देते हैं।

खुदाई (Harvesting)– बुवाई के लगभग 7–8 महीनों बाद फसल को खोदा जा सकता है। परन्तु सौंठ के लिये फसल को पूर्ण रूप से पक जाने पर ही खोदते हैं। फसल के पकने में मौसम और किस्म के अनुसार 7–8 माह लगते हैं। जब पौधों की पत्तियाँ सूखने लगें, तब प्रकंदों को फावड़े, कस्सी अथवा खुर्पी से खोदकर निकाल लेते हैं।

उपज (Yield)– प्रति हेक्टेयर 100–150 क्विंटल प्रकंद मिल जाते हैं। सुखाने पर इससे 20–30 क्विंटल तक सौंठ प्राप्त होती है।

भण्डारण– भण्डारण से पूर्व क्विनालफास (0.025%) नामक दवा से 1/2 घंटे तक उपचारित करके व सुखा कर ही भण्डार गृह में रखना चाहिए।

रोग नियंत्रण (Disease Control)–

अदरक की फसल को निम्न रोग सताते हैं, जिनकी रोकथाम के उपायों का उल्लेख नीचे किया गया है–

मृदु विगलन (Soft Root) या प्रकंद विगलन (Rhizome Root)– यह रोग मुख्यतया ''पिथियम ऐफेनीडरमेटम'' नामक फफूँदी के कारण होता है। इस रोग के प्रकोप के कारण नीचे की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। बाद में पूरा पौधा पीला पड़कर मुरझा जाता है। भूमि के समीप का भाग पनीला (Watery) एवं कोमल हो जाता है।

पौधों को खींचने पर वह प्रकन्द से जुड़े स्थान से सुगमता से टूट जाता है। बाद में पूरा प्रकंद सड़ जाता है, जिसे 'प्रकन्द विगलन' की संज्ञा दी जाती है। इस रोग के बीजाणु (Spores) भूमि में विद्यमान रहते हैं और बीज के रूप में प्रयुक्त प्रकन्द भी बीजाणु अपने साथ ले जाते हैं। इसलिये रोग से प्रभावी बचाव हेतु दोनों को ही उपचारित करना पड़ता है।

शेष भाग पृष्ठ 55 पर

एन.पी.वी.– स्थायी कीट प्रबंधन हेतु एक शक्तिशाली जैविक कीटनाशक

डॉ. आरती कटियार
जन्तु विज्ञान विभाग,
एस.जे. महाविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

फसलों में कीटों की रोकथाम के लिए रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग वर्षों से होता चला आ रहा है। अतः इससे कीटों में रासायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता में वृद्वि हुई है। आज रासायनिक कीटनाशकों के छिड़काव से कीटों का नियंत्रण करना मुश्किल होता जा रहा है। कीटनाशकों के प्रयोग से फसलों में कृषक मित्र जीवों की संख्या भी कम होती जा रही है साथ ही पर्यावरण प्रदूषण में भी बढोत्तरी हो रही है। विषाणु आधारित जैव कारक एन.पी.वी. (N.P.V.- न्यूक्लियर पॉली हाइड्रोसिस वायरस) कीट नियंत्रण में कारगर सिद्ध हुआ है। चने का फली भेदक कीट, बहुसफली कीट है जो चने के अलावा टमाटर, कपास, मक्का, सोयाबीन, अरहर आदि फसलों पर भी आक्रमण कर उन्हें नुकसान पहुँचाता है। इसका वैज्ञानिक नाम हेलीकोवर्पा आर्मीजेरा है। इस कीट के हानिकारक होने का मूल कारण इस कीट के बहुभक्षी होने के साथ इसकी अत्यधिक प्रजनन व पलायन क्षमता है। इस कीट की केवल एक सूँडी 30–40 फलियों तक को हानि पहुँचा सकती है। एक मादा अपने जीवनकाल में 400 से 13500 अण्डे देती है। इन अण्डों से 3–4 दिनों में प्रथम अवस्था की सूंड़ी निकलती है जो फलियों एवं कोमल पत्तियों को नुकसान पहुँचाना शुरु कर देती है। न्यूक्लियर पॉली हाड्रोसिस विशाणु (एन.पी.वी) चना फली भेदक का नियंत्रण करने में अत्यन्त प्रभावशाली व पर्यावरण की दृश्टि से अत्यन्त सुरक्षित व कम लागत वाली जैविक विधि है। एन.पी.वी, चना फली भेदक की सूड़ी पर प्राकृतिक रुप से पाया जाने वाला विषाणु है। इन विषाणु ग्रसित पत्तियों या फलियों को सूड़ी द्वारा खाये जाने पर सूड़ी धीरे धीरे सुस्त होकर मर जाती है। ये विषाणु बहुत ही विशिश्ट होते हैं जो वातावरण में फली भेदक की सूड़ी को ही नुकसान पहुचाते हैं। एन.पी. वी. (न्यूक्लियर पॉली हाइड्रोसिस वायरस) क्या है ? एन.पी.वी. सूक्ष्म परजीवी वायरस (विषाणु) होते हैं जो कि केवल न्यूक्लिक एसिड एवं प्रोटीन के बने होते हैं। यह विषाणु जीव के अन्दर होने पर ही सक्रिय रहता है अन्यथा निष्क्रिय रहता है।

2. एन.पी.वी. बनाने की विधि एन.पी.वी. को निम्न प्रकार से बनाया जा सकता है –

1. एन.पी.वी. ग्रसित काले रंग की चना फली भेदक की सूंड़ियों को खेतों से एक डिब्बे में इकट्ठा कर लें ।
2. इन सूंडियों को थोड़ा सा पानी मिलाकर मसल कर महीन कपड़े से छान लें ।
3. एन.पी.वी ग्रसित चना फली भेदक की सूंडी न मिलने पर खेतो ंसे स्वस्थ सूंड़ियों को एकत्रित कर ले ं फिर पहले से तैयार एन.पी.वी. के घोल में 2 घंटे तक भिगो दें, चने के दानों को एकत्रित की हुई सूंड़ियों को खिलायें।
4. तीन एन.पी.वी ग्रसित सूं ड़ियो ंसे प्राप्त एन.पी.वी को एक सूंड़ी समतुल्य या लार्वा इक्वीवे लेन्ट (L.E.. एल.ई) कहते हैं।
5. इस तरह तैयाार एन.पी.वी. के घोल को पानी से मिलाकर चना भली भेदक से ग्रसित फसल पर छिड़काव करें । पौधे के एन.पी.वी. लगे भाग का ं खाने से विशाणु स्वस्थ सूंड़ी को ग्रसित कर दें गे और इस प्र कार चना फली भे दक की सूं ड़ी का प्रबंध हो जाता है।

एन.पी.वी. का सूंड़ी पर हमला यह विषाणु सूंडी के मुंह के रास्ते से कीट के भोजन नली में प्रवेश करता है तथा वहां जाकर कीट के खून में संचरण से यह पूरे शरीर में फैल जाता है और उसे रोग ग्रसित करने लगता है जिससे कीट शीघ्र ही मर जाता है। एन.पी.वी. ग्रसित सूडी के लक्षण एन.पी. वी. के सूंडी के शरीर में प्रवेश होने के 2 से 3 दिन बाद रोग के लक्षण दिखायी देने लगते हैं। सूंडयिाँ गहरे भूरे रंग की होकर पौधे की टहनियों पर चिपकी या उल्टी लटकी नजर आती हैं। इस प्रकार की सूडियों को एकत्रित कर फिर से नया एन.पी.वी. तैयार किया जा सकता है। एन.पी.वी. छिड़काव करने की विधि फसल के अनूसार 250 से 500 लीटर पानी मे ंमिलाकर प्रति हेक्टेयर फसल पर छिड़काव करे ं । चना व मटर में 250 एल.ई. तथा कपास में 450 एल.ई. (एल.ई.–सूंडी/समलुल्य) प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें । एन.पी.वी. का छिड़काव करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान मे ं रखना चाहिए। 1. छिड़काव के लिए तैयार घोल में 250 ग्राम गुड़ व एक मि.ली. टीपवाल/या अन्य स्टीकर का प्रयोग करें ताकि विषाणु का घोल पत्तियों पर चिपक जायें ।

2. एन.पी.वी. का छिड़काव दोपहर के बाद करना चाहिए ताकि तेज धूप का असर न हो । 3. एन.पी. वी. का छिड़काव फसल में सूण्डी के दिखायी देते ही कर दें। 4. फसल पर आवश्यकतानुसार 15–20 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें । 5. विषाणु घोल (एन.पी.वी.) में 0.1 प्रतिशत टी पाल या 0.5 प्रतिशत शीरा या गुड़ मिलाने से विषाणु पत्तियों पर आसानी से चिपक जाता है जिसमें और अच्छा कार्य करता है। सूर्य की किरणों के दुश्प्रभाव से बचाने के लिए लिए एन.पी.वी. विषाणु का छिड़काव

सायंकाल किया जाता है।

एन.पी.वी. के प्रयोग से लाभ

- इसका कोई विषाक्त प्रभाव नहीं होता है।
- इन्हें कीटनाशी रसायनों के साथ भी प्रयोग किया जा सकता है।
- अन्य लाभकारी जीवों को नुकसान नहीं पहुंचाता है।
- लम्बे समय प्रयोग के बाद भी लक्षित कीटों में इसका प्रतिरोधक उत्पन्न नहीं होता है।
- किसान स्वयं इस वायरस का घोल तैयार कर सकते हैं जिसके लिये इन्हें वायरस से ग्रसित सूड़ियों को इकट्ठा करके, साफ बर्तन में पीसकर उनका घोल तैयार करके दूसरे प्रकोपित खेतों में फसल पर छिड़काव किया जा सकता है।

एन.पी.वी. के प्रयोग करने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें

1. जिस कीट से एन.पी.वी. तैयार हो उसी के नियंत्रण के लिए ही एन.पी.वी. का प्रयोग करना चाहिए न कि किसी अन्य कीट के लिए।
2. छिड़काव के समय पौधे के पूरे भाग पर समान रुप से छिड़काव होना चाहिए क्योंकि यह उदर (पेट) जहर के रुप में कार्य करता है।
3. वायरस के कण घोल में नीचे बैठ जाते हैं। अतः छिड़काव करते समय घोल को हिलाते रहना चाहिए।
4. छिड़काव हमेशा सायंकाल को ही करना चाहिए क्योकि सूर्य की किरणों से वायरस की क्रियाशीलता कम हो जाती है।
5. सूड़ियों की शुरु की अवस्था पर एन.पी.वी. ज्यादा प्रभावशाली असर दिखाता है अतः यथा संभव प्रारम्भिक अवस्था में छिड़काव करना चहिए।
6. एन.पी.वी. के प्रयोग के तुरन्त बाद परिणाम की उम्मीद नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह 4–5 दिन ही प्रभाव दिखाता है।
7. छिड़काव के समय घोल में किसी चिपकाने वाले पदार्थ का प्रयोग अवश्य करना चाहिए जैसे–गुड़, टी, पाल आदि।
8. एन.पी.वी. का प्रयोग आर्थिक क्षति स्तर आने पर ही करना चाहिए।

प्राकृतिक कार्बनिक अवशिष्ट समाधि खाद की कृषि में उपयोगिता एवं महत्व

महीपत सिंह

बीज प्रौद्योगिकी विभाग

कृषि विज्ञान संस्थान, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी (यू0पी0)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। और देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एंव कृषि पर आधारित व्यवसायों से जुडी है। लगातार बढ़ती हुई जनसंख्या एवं घट्ती हुई कृषि भूमि एवं लगातार बढ़ते हुये उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की उर्वरता में कमी आयी है। अनुमानतः वर्ष 2020 मे हमे लगभग 50 करोड़ टन खाद्यान की आवश्यकता होगी इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए खाद्यान्न उत्पादन प्रतिवर्ष 4 प्रतिशत की दर से वृद्धि करनी होगी। वर्तमान मे यह वृद्धि दर 3 प्रतिशत के आसपास है। अतः प्रस्तावित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मृदा उर्वरता को बढ़ाना होगा साथ ही संतुलित रासायनिक खादों एंव जैविक खादों की उपयोगिता पर विशेष वल देना होगा एवं किसानों को जैविक खादो के उपयोग एंव महत्व को समझाना होगा तभी उत्पादन में वृद्धि सम्भव हो सकेगी।

जैविक खादो मे 'समाधि' खाद एक आदर्श एवं उपयुक्त प्राकृतिक कार्बनिक अपशिष्टों से तैयार खाद के रूप प्रयोग किया जा रहा है। और गेहुँ उत्पादन मे प्रतिएकड़ 75 किलोग्राम वृद्धि देखी गयी है।

समाधि खादः— भारत वर्ष मे मृत पशुओं को खुले मैदान में फेंक देने की प्रथा प्रचलित है इससे हमारा पर्यावरण प्रदूषित होता है साथ ही साथ प्राकृतिक कार्बनिक अवशिष्ट का हम खेती में प्रयोग करने से चूक जाते है।

पालतू एवं छुट्टा किसी भी मृत पशुओं को जमीन मे (6 महीने) दबाकर तैयार होने वाली खाद समाधि खाद कहलाती है।

यह हमारे फसलोत्पादन में एक वरदान के रूप मे सावित हुई है एवं इनके प्रयोग से होने वाले प्राकृतिक प्रदूषण का नियंत्रण भी हो जाता है। अतः यह खाद कृषि एवं प्राकृतिक वातावरण को शुद्ध रखने के रूप मे उपयोगी साबित हुई है।

समाधि खाद बनाने के लिए आवश्यक सामग्रीः— समाधि खाद बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

को सारणी क्रमांक–1 एंव 2 के माध्यम से बताया गया है।

सारणी–1 समाधी खाद के लिए सामग्री

क्रम संख्या	सामग्री का नाम	मात्रा/इकाई
1	मृत पशु	1(संख्या)
2	तालाब की मिट्टी या	5-10 कुन्तल
3	खेत की मिट्टी	7-14 कुन्तल
4	गोबर की खाद	50-100 किग्रा
5	सुपर फास्फेट	10-20 किग्रा
6	यूरिया	5-20 किग्रा
7	खड़ा नमक काँटेदार झाड़िया	आवश्यकतानुसार

सारणी–2:–समाधि खाद के लिए गड़ढे का आकार

क्रम संख्या	मृत पशु का वजन	गड्ढे का आकार	कुल क्षेत्र
1	1-2 कुन्तल तक	3x4x3	36 घनफुट
2	2-4 कुन्तल तक	4x5x3	60 घनफुट
3	4-7 कुन्तल तक	4x6x3	72 घनफुट

समाधि खाद बनाने की विधि:– मृत पशु के वजन के अनुसार निर्धारित आकार का गडढ़ा किसी वृक्ष की छाया के नीचे ऐसे स्थान पर खोदें जहाँ पानी भरने का खतरा न हो। खोदे गये गडढ़े मे सर्वप्रथम 4 से 5 कुन्तल सड़ी हुई गोबर की खाद की तह लगा दी जाती है। फिर ऊपर से मृत पशु को लिटा दिया जाता है। पशु के शरीर एंव गडढ़े की दीवारो के बीच के रिक्त स्थान को तालाब अथवा अच्छे खेत की मिट्‌टी और साथ मे गोबर की खाद की बराबर–बराबर मात्रा लेकर निर्धारित मात्रा मे सिंगल सुपर फास्फेट एंव यूरिया को मिलाकर भर दिया जाता है। फिर पशु के शरीर के ऊपर 5 से 20 किग्रा तक(पशु के वजन के अनुसार) खड़ा नमक रख दिया जाता है। तदोपरान्त ऊपर से मिट्‌टी से ढ़क दिया जाता है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पशु शरीर के ऊपर अनुमानित 2 फिट मिट्‌टी अवश्य रहे। यह भी आवश्यक है कि यदि मिट्‌टी में नमी की मात्रा कम हो तो पानी का छिड़काव करके मिट्‌टी को नम कर देना चाहिए। गडढ़े को भरने के बाद ऊपर से कांटेदार तार तथा जंगली कांटेदार झाड़ियाँ अवश्य लगा दे ताकि कुत्ते/मांसाहारी जंगली जानवर पशु को खोदकर खाने न पायें।

समाधि खाद निकासी:— 6 माह बाद गड्ढे के ऊपर की 1 फिट मिट्टी निकालकार अलग कर दें। फिर शेष गड्ढे के अन्दर की समस्त मिट्टी/कचरा(समाधि खाद) को अलग से निकालकर रखें खाद निकालते समय पशु की हड्डियों को अलग करते जायें। खोदे गये गड़ढे की सम्पूर्ण खाद निकाले जाने के बाद यदि उसमें नमी की कमी दिखायी दे तो उसमे पानी का छिड़काव करके नम कर दें। बनाये गये गड्ढे के पांचो तरफ से 1 फिट मिट्टी भी खाद बन जाती है। अतः उसे भी खोदकर निकाल लें।

भण्डारण:— समाधि खाद निकालने के समय के यदि खेत बुवाई के लिए तैयार हो तो खेत मे विखेर कर फसल की बुवाई करें यदि खाद को कुछ दिन रखने की आवश्यकता हो तो उसे छायादार स्थान पर ढ़क कर छोड़ दे तथा ध्यान रखे खाद सूखने न पायें।

प्रयोग विधि:— 4 कुन्तल खाद को 10 से 15 कुन्तल सड़ी हुई गोबर की खाद मे अच्छी तरह मिलाये तथा हल्का पानी का छिड़काव करके नम करके जमीन पर 3 से 4 इन्च मोट़ाई मे विखेरकर किसी ट़ाट़ के कपड़े से ढ़क दे 2—3 दिन रखने के बाद उक्त खाद को 1 हेक्टेयर क्षेत्रफल मे प्रयोग करें। इस प्रकार 56 घनफिट वाले गड्ढ़े की खाद 2 से 2.5 हेक्टेयर के लिए 60 घनफिट वाले की 4 से 5 हेक्टेयर तथा 72 घनफिट वाले की खाद 5 से 6 हेक्टेयर मे प्रयोग कर सकते है। (सारणी—3)।

सारणी—3 प्रति हेक्टेयर समाधि खाद कितनी प्रयोग की जाये

Øe l[;k	xM<s dk vkdkj	{k=Qy ?kuQV	ikIr [kkn dh ek=k vuekfur
1	3×4×3	36 ?kuQV	10&12 dUry
2	4×5×3	60 ?kuQV	18&20 dUry
3	4×6×3	72 ?kuQV	24&26 dUry

लाभ:—

1— सामान्य व्यवस्था में समाधि खाद का प्रयोग करने पर अधिकतम 30 प्रतिशत तक अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

2— पशुवध एवं धुट़्टा प्रथा रोकने मे एक सार्थक पहल।

3— पर्यावरण के बिगड़ते स्वरूप को सही रखने मे सहायक।

4— पशु क्रूरता निवारण में सार्थक।

5— खेतो की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में सहायक।

6— लाभदायक सूक्ष्म जीवाणुओं का संरक्षण।

7— कीट/व्याधी के प्रकोप को कम करने का उपाय।

खाद्य पदार्थों में पाए जाने वाले रासायनिक कीटनाशकों के अवशेषों के प्रति सजग रहें

डॉ0 राम आसरे एवं सतीश बाबू

अपर वनस्पति संरक्षण सलाहकार, आईपी0एम0 फरीदाबाद–121001

एवं रा0 स0 ना0 प्र0 के0, पूसा–नई दिल्ली–110012

भारत एक कृषि प्रधान देश है। आजादी के बाद कृषि के क्षेत्र में भारत में कई कीर्तिमान स्थापित किए हैं जिनमें से अनाज उत्पादन में हरित क्रांति, दुग्ध उत्पादन में धवल क्रांति, मछली उत्पादन में नीली क्रांति एवं तेल उत्पादन में पीली क्रांति प्रमुख है। इन सभी कीर्तिमानों का श्रेय देश के नीतिकार, वैज्ञानिकों, कृषि प्रचार एवं प्रसार कार्य कर्ताओं एवं हमारे देश के महान किसानों को जाता है। इन कीर्तिमानों के स्थापित होने के साथ–साथ देश में जनसंख्या वृद्धि भी तेजी से हुई है। अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भर होने की वजह से इस देश की बढ़ती हुई आबादी को भरपूर भोजन देने में एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में भागीदारी रखने में हमारे कृषकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आविष्कार से विकास होता है। कृषि क्षेत्र में बताए गए उपरोक्त विकास के कीर्तिमान आवश्यकता के अनुसार प्रयत्न करके स्थापित किए गए हैं जैसे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में अनाज की कमी थी इसके लिए भारत सरकार की तरफ से अधिक अन्न उपजाओं कार्यक्रम (Grow more food programme) सन् 1947 से 1953 तक चलाया गया। भारत सरकार ने सिंचाई के साधन, अधिक उपज देने वाली फसलों की प्रजातियां, रासायनिक उर्वरक तथा कीटनाशकों के उपयोग को बढ़ावा दिया जिसके फलस्वरूप हरित क्रांति आई और देश खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बन गया।

फसलों में नाशीजीव नियंत्रण हेतु रासायनिक कीटनाशकों के अंधाधुंध प्रयोग से विभिन्न प्रकार की स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संबंधी समस्याएं उत्पन्न होने लगीं जिसकी वजह से जैव–सुरक्षा को भी खतरा प्रतीत होने लगा।

उपरोक्त खतरों को ध्यान में रखते हुए कृषि उत्पादन करते समय हमें निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति का ध्यान रखना चाहिए–

1. हमें अपने 125 करोड़ देशवासियों के लिए खाने के लिए भोजन सुनिश्चित (food security) करना चाहिए।
2. हमें अपने स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के प्रति सजग रखना चाहिए।

3. आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए हमेशा पर्याप्त भोजन का भंडारण रहना चाहिए।
4 कम से कम लागत से अधिक से अधिक कृषि उत्पादन करना चाहिए।
5. विश्व व्यापार की स्पर्धा में भी हमें अपना अस्तित्व रखना चाहिए इसके लिए हमें विश्व व्यापार के मानकों के बराबर गुणवत्ता युक्त भोजन एवं अन्य कृषि उत्पादन पैदा करना चाहिए।
6. देश की जनसंख्या की वृद्धि के तुलना के हिसाब से अनाज उत्पादन की वृद्धि के तुलना के हिसाब से अनाज उत्पादन की वृद्धि करना चाहिए।
7. हमें गुणवत्ता युक्त भोजन का उत्पादन करना चाहिए।

जैसा कि हम जानते है कि खेती से पैदा होने वाले खाद्य–पदार्थों जैसे अनाज, फल, सब्जियों आदि ये रासायनिक कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग किया जाता है जिसके फलस्वरूप इन खाद्य–पदार्थों में रासायनिक कीटनाशकों के अवशेष प्रचुर मात्रा में पाए जाने लगे हैं और ये खाद्य–पदार्थ इन कीटनाशकों के अवशेषों की उपस्थिति की वजह से विषाक्त एवं जहरीले हो गए हैं, जिनका हमारे स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः क्या हमें इन कीटनाशकों के फसलों में अंधाधुंध प्रयोग को कम करने के प्रति सजग एवं जागरुक नहीं होना चाहिए जिससे हम अपने आप को एवं अपने पर्यावरण को सुरक्षित एवं स्वस्थ्य रख सकें।

क्या हम साग, सब्जी, फल, सलाद एवं दूध आदि खाद्य–पदार्थों को खरीदने से पहले यह सोचते हैं कि यह पदार्थ हमारे खाने योग्य हैं या नहीं तथा हमारे स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित हैं या नहीं। इनके अंदर जहरीले कीटनाशक के अवशेष तो नहीं हैं।

अब आप कहेंगे कि अगर सोच भी लें तो क्या होगा? क्या हमें वक्त कीटनाशकों के अवशेषों से मुक्त खाद्य पदार्थों मिल जायेंगे। क्या हम सब्जी खरीदते समय इस बात का पता लगा सकते हैं कि इन फल व सबजियों में कीटनाशकों के अवशेषों का स्तर क्या है। उत्तर आएगा नहीं।

अगर हमें अभी कीटनाशकों के अवशेषों से मुक्त फल व सब्जी नहीं मिल पायेगी तो एक जागरुकता तो आएगी ही जिससे जनधारणा बनेगी। अगर जनधारणा बन गई तो जनमुद्दा बनेगा परंतु इसमें उतना ही समय लगेगा जितना आई.पी.एम. के बारे में जानकारी मिलने में जनसाधारण को लगा है। जनसाधारण के कुछ ऐसे मुद्दे होते हैं जो वाकई सही होते हैं और जरूरी होते हैं परंतु उन मुद्दों को कार्यान्वित करने में सरकारें चली जाती हैं, जैसे कि परिवार नियोजन के लिए इंदिरा गांधी की सरकार चली गई थी, तथा शराब के मुद्दे पर श्री बंसीलाल जी की सरकार चली गई थी। जरा सोचें कि क्या परिवार नियोजन तथा शराब बंदी मानव समाज के लिए आवश्यक नहीं हैं? इसी प्रकार से कीटनाशकों को कम करने के लिए जन विचारधारा बनानी होगी तथा तभी जनता सजग हो सकेगी और जब जनता सजग होगी तब हमारे कृषक या तो कीटनाशकों का सुरक्षित इस्तेमाल

करने के लिए कदम उठायेंगे या उनका उपयोग कम करने के लिए कदम उठायेंगे। जब तक हमारे मन में जन–कल्याण की भावना नहीं आती कि हम स्वस्थ रहें, दुनिया को भी स्वस्थ रखें, पर्यावरण एवं धरती मां को सुरक्षित रखें तब तक कीटनाशकों का उपयोग कम करना संभव नहीं है। स्वयं स्वस्थ एवं सुरक्षित रहें तथा दूसरों को भी स्वस्थ एवं सुरक्षित रखें की भावना से हमें खेती करनी चाहिए तभी कीटनाशकों का उपयोग कम हो सकेगा।

यद्यपि अब कुछ लोग जागरूक होने लगे हैं तथा इस तरफ सोचने भी लगे हैं, एक दिन कुछ व्यक्तियों की सोच समाज की सोच बनेगी एवं समाज का मुद्दा बनेगा। अभी यह सोच धीरे–धीरे हो रही है क्योंकि कीटनाशकों के दुष्परिणाम हमें परोक्ष रूप से नहीं दिखाई दे रहे हैं। हम किसी पेस्टीसाइड इंडस्ट्री को पेस्टीसाइड बनाने से मना नहीं कर सकते क्योंकि हमने अभी तक रासायनिक कीटनाशकों के विभिन्न प्रकार के दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं इसलिए हमें इनके स्थान पर नाशीजीव नियंत्रण की अन्य विधियों एवं जैव कीटनाशकों के प्रयोग को बढ़ावा देना पड़ेगा। हम इस बारे में आम जनता को जागरूक तो कर ही सकते हैं। जागरूक जनता दुनिया बदल देती है। एक दिन परिवार नियोजन का कार्यक्रम जनता के द्वारा घृणा से देखा जाता था अब वही परिवार नियोजन कार्यक्रम जनता की सोच व समझदारी से चल रहा है। जनता में एक जागृति आई है। इस कार्य में करीब 40 वर्ष का समय लग गया है। इसी प्रकार से हमें कीटनाशकों के दुष्परिणामों के बारे में जन जागृति पैदा करना अभी फिलहाल का एक मुख्य मुद्दा बनाना होगा। रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर जैविक कीटनाशकों के प्रयोग को बढ़ाना होगा। इसके साथ–साथ जैविक कीटनाशकों के गुणवत्ता को भी सुनिश्चित करना पड़ेगा। इसके लिए हमें जागरूकता अभियान चलाने की आवश्यकता है। इससे जनसाधारण में जागरूकता बढ़ेगी तथा रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर जैविक कीटनाशकों की मांग बढ़ेगी। इसके बाद जैविक कीटनाशकों के गुणवत्ता का सवाल आयेगा। अभी जैविक कीटनाशकों की मांग को तो बढ़ाएं, तब गुणवत्ता के बढ़ाने का प्रश्न आयेगा। क्या रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग एवं उत्पादन एक साथ बढ़ गया, नहीं। यह उनकी मांग पर बढ़ा। जब जैविक कीटनाशकों की मांग बढ़ेगी तो अवश्य ही जैविक कीटनाशकों के उत्पादन हेतु उद्यमी आगे आयेंगे एवं इनका उत्पादन बढ़ायेंगे। जैविक कीटनाशकों की मांग को बढ़ाने के लिए हमें कृषकों के बीच जाकर इनका उपयोग करके गांव–गांव में प्रदर्शन प्लॉट लगाने होंगे जिनमें जैविक कीटनाशकों की उपयोगिता को कृषकों के बीच में साबित करना होगा कि रासायनिक कीटनाशकों के कम उपयोग से या इनके उपयोग के बिना जैविक कीटनाशकों के उपयोग को बढ़ावा देकर फसल उगाई जा सकती है। इससे कृषकों के बीच में जैविक कीटनाशकों उपयोग को बढ़ावा देकर फसल उगाई जा सकती है। इससे कृषकों के बीच

में जैविक कीटनाशकों के प्रति आत्मविश्वास पैदा हो सकेगा और इनकी मांग बढ़ सकेगी। इसके लिए हमें मन एवं लगन से कार्य करना होगा तथा हमें अपने एवं राज्य सरकार के कृषि प्रचार एवं प्रसार तंत्र को मिलकर काम करना होगा। इसके लिए गांव में कृषकों के बीच जाकर किसानों के द्वारा ही आई.पी.एम. सेवा केंद्र स्थापित करवाने पड़ेंगे जिसके लिए जैविक कीटनाशकों के एवं अन्य आई.पी.एम. इनपुट को बनाने की विधियों को सरल बनाना होगा तथा इन सरल विधियों से जैविक कीटनाशकों एवं अन्य आई.पी.एम. इनपुटस बनाने के लिए कृषकों द्वारा बनाए गए स्वयं सहायता समूह के सभी कृषक सदस्यों को इनके बनाने का प्रशिक्षण देना पड़ेगा जिससे ये जैविक कीटनाशक या अन्य आई.पी.एम. इनपुट ये कृषक अपने गांव में बना सकें और अपने सहयोगी किसानों को इनकी पूर्ति कर सकें तभी हम हमारे खाद्य–पदार्थों में रासायनिक कीटनाशकों के अवशेष को कम कर सकेंगे।

आई.पी.एम. विधि अपनाकर हम रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कृषि उत्पादों के उत्पादन करने में कम कर सकते हैं जिससे कृषि उत्पादों में रासायनिक कीटनाशकों के अवशेष या तो बिल्कुल नहीं रहेंगे या कम होंगे जिससे हम अपने बच्चों का स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं तथा अपने पर्यावरण को भी नुकसान से बचा सकते हैं इसके लिए हमें जनसाधारण को, कृषकों को, नीतिकारों को प्रचार एवं प्रसार कार्यकर्ताओं को एवं शोधकर्ताओं को मिल–जुलकर प्रयास करना होगा जिससे आम जनता में कृषि पदार्थों में पाए जाने वाले रासायनिक कीटनाशकों के बारे में जागरूकता पैदा की जा सके, इसके लिए जनसंचार माध्यमों (mass communication media) एवं गांव में होर्डिंग लगाकर जागरूकता पैदा की जानी चाहिए।

भारत सरकार के द्वारा चलाई जा रही राष्ट्रीय स्तर पर कीटनाशक अवशेषों की निगरानी स्कीम (Monitoring of Pesticides' Residue at National Level, MPRNL) जिसका मुख्य उद्देश्य कृषि उत्पादों में कीटनाशकों के अवशेषों की उपस्थिति एवं उनके स्तर का पता लगाना है कि नतीजों को आम जनता को बताया जाए कि इन फलों व सब्जियों में इन–इन रासायनिक कीटनाशकों के अवशेष इन–इन इलाकों में हानिकारक स्तर के मानकों से अधिक मात्रा में पाए गए हैं जिससे जनता में जागरूकता पैदा हो सके और उन क्षेत्रों में जहां ये इन कीटनाशकों के अवशेष हानिकारक स्तर के मानकों के स्तर से ऊपर पाए गए हों वहां–वहां पर आई.पी.एम. प्रदर्शन एवं आई.पी.एम. खेत पाठशालाओं का आयोजन करके कृषकों में रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कम करने के लिए जागरूकता पैदा की जा सके और मानव समाज को एवं पशु–पक्षियों को रासायनिक कीटनाशकों के दुष्प्रभावों से बचाया जा सके। यह मानवता के प्रति एक उपकार और सच्ची सेवा होगी।

प्राचीनकाल से वर्तमान तक पशु विज्ञान शिक्षा का सफरनामा–एक समीक्षा

डा0 शीतला प्रसाद वर्मा

सह प्राध्यापक (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान)

कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कालेज, इलाहाबाद–211001

सारांश

नव पाषाण युग के दौरान पशुओं के पालतूकरण से शुरूआत के साथ वर्तमान पशु विज्ञान विश्वविद्यालयों तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के पशु विज्ञान अनुसंधान संस्थानों की स्थापना एवं विकास, पशु विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर उत्कर्ष यात्रा–विभिन्न कालों में विभिन्न सोपानों से होकर गुज़री है। प्राचीन विशेषज्ञों में सालिहोत्र, पालकप्य, भगवान बुद्ध, नकुल और सहदेव ने पशु विज्ञान के विभिन्न शाखाओं में अभूतपूर्व योगदान दिया था। पशु विज्ञान की जानकारी प्राचीन ग्रन्थ यथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र, वराहमिहिर की बृहतसंहिता, विश्णु धर्मोत्तर पुराण, अश्वेधक, मतंग चिकित्सा आदि में मिलता है। मध्यकाल में पशु विज्ञान विकास के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई, सिर्फ पुराने ग्रन्थों का अरबी व फारसी में अनुवाद हुआ। अँग्रेजी शासन काल में, 1827 में सैन्य पशु चिकित्सा विभाग की स्थापना के साथ निरन्तर पशु विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में कार्य होते रहे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के कृषि विश्वविद्यालयों में पशु विज्ञान विभाग की स्थापना के साथ धीरे–धीरे पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पशु चिकित्सा विश्वविद्यालय एवं डेरी, मात्स्यिकी एवं पशु चिकित्सा के अन्तर्राश्ट्रीय ख्याति के अनुसंधान संस्थाओं में निरन्तर शिक्षा, शोध व प्रसार में कार्य हो रहा है।

नवपाषाण युग के मिट्टी के बर्तनों के ऊपर विभिन्न पशुओं के चित्रों का पाया जाना तथा पारम्परिक सभ्यताओं के स्थानों से खुदाई के दौरान पशुओं की अस्थियों का मिलना इस बात का ठोस प्रमाण है कि इस दौरान पशुओं का पालतूकरण शुरू हो चुका था। पशु विज्ञान शिक्षा के अन्तर्गत पशु पालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान, डेयरी विज्ञान तथा मत्स्य विज्ञान सम्मिलित किया

जाता है। अत्यन्त प्राचीन काल में डेयरी विज्ञान एवं मत्स्य विज्ञान के बारें में उल्लेख उपलब्ध नहीं है। मध्य–पूर्व के समीप के देशों में ई0पू0 से लगभग 2000 वर्ष पहले प्रथम रोमन्थी पशु बकरी का पालन शुरू हुआ था। भारत में आर्यों के आक्रमण के पूर्व घोड़ों का संदर्भ नहीं मिलता है। पशु विज्ञान के अस्तित्व के प्रथम अभिलेखिक प्रमाण के रूप में अथर्ववेद (1500–500 ई0पू0) है जिसमें दुग्धशाला के संदर्भ उपलब्ध है :

प्राचीन काल में पशु विज्ञान शिक्षा

प्राचीन काल के प्रमुख पशु विज्ञानी–

क्रमांक	नाम	योगदान
1.	सालिहोत्र	पशु चिकित्सा विज्ञान के जनक अश्व के प्रशिक्षण, प्रजनन, आहार आदि पर विस्तृत कार्य
2.	पालकप्य	हस्तिशास्त्र विशेषज्ञ
3.	भगवान बुद्ध	हस्तिशास्त्र पर पुस्तक
4.	नकुल	अश्व के प्रशिक्षण एवं प्रबन्धन
5.	सहदेव	गौवंश के प्रबन्धन में योगदान

पशु विज्ञान जानकारी सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ –

अथर्ववेद – (1500–500 ई0पू0)

अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, गरुण पुराण – (ई.पू. 300 से 700 ई.)

कौटिल्य – अर्थशास्त्र

वराहमित्र – बृहतसंहिता

विष्णु धर्मोत्तर महापुराण

अश्ववैधक

अश्व चिकित्सा

मतंग चिकित्सा इत्यादि।

मौर्यकाल (322 से 32 ई.पू.) में गौध्यक्ष होते थे जो दुधारू गायों–बछड़ों के झुंडों के पर्यवेक्षण, चरवाहों तथा ग्वालों के कार्यों पर निगरानी एवं भण्डारित दूध–घी की निगरानी का कार्य करते थे। इस काल में भैसों को डेरी पशुपालन में मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। सम्राट अशोक के काल में

राजकीय संचालित पशु चिकित्सालय के प्रमाण उपलब्ध हैं किन्तु पशु चिकित्सकों के प्रशिक्षण का उल्लेख कहीं नहीं मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में पशु विज्ञान की शिक्षा ऋषियों द्वारा अपने शिष्यों की दी जाती रही होगी।

प्राचीन काल में व्यक्ति की हैसियत गायों की संख्या से आंकी जाती थी। लोग विवाह एवं यज्ञ के अवसर पर गायों का दान करते थे। गाय हमारे धर्म में थी, गाय हमारे अर्थ में थी। दुग्ध एवं दुग्ध पदार्थों के सेवन से पूरा जीवन यापन प्रफुल्लित बना रहता था एवं मृत्यु के पश्चात् भी धार्मिक मान्यताओं के अनुसार बिना गाय के भवसागर को पार नहीं किया जा सकता था। अतः प्राचीन काल में गाय हमारे धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष का एक महत्वपूर्ण साधन थी। इस काल में सम्पदायुक्त गऊ के लिए 'रेवती' गायों के बाँधने के स्थान को 'गोष्ठ' तथा दोहन के स्थान को 'योनि' कहा जाता था। पशुओं की रक्षा हेतु पूषण देवता को उत्तरदायी माना गया था।

वेद में 'लोहित' (लाल), 'कृष्ण' (काली) व 'शुक्ल' (सफेद) तीन रंग की गायों का उल्लेख किया गया है। गर्भिणी गाय हेतु 'गृष्टि' तथा दूध देने वाली गाय के लिए 'धोना या धेनू', बन्ध्या गाय हेतु 'धनुस्तरीय' एक बच्चे देने वाली गाय के लिए 'काक बन्ध्या' तथा जिस गाय का बच्चा गिर जाय अर्थात गर्भपात हो जाय उसके लिए 'निवान्या' शब्द का प्रयोग किया जाता था।

पराशर ऋषि ने कृषि की महत्ता व गोपालन का उल्लेख करते हुए गव्य एवं पंचामृत को उनके संगठन सहित बताया है।

गव्य– गोमूत्र–1 पल, गोबर–1/2 पल, क्षीर–7 पल, दही–3 पल, घी–1 पल तथा जल–1 पल।
(नोट–20 पल का एक तोला होता है)

2. अग्रेंजी शासन में पशु विज्ञान शिक्षा– प्राचीन काल के पश्चात पशु विज्ञान सम्बन्धी सूचना सीधे अंग्रेजी शासन काल में मिलती है। मुगल काल में सालिहोत्र एवं अन्य प्राचीन पशु विज्ञानियों की जानकारी को शहंशाह शाहजहाँ ने अपने दरबार के विद्वान अब्दुल्ला खान फिरोज जंग से फारसी में अनुवाद कराया था।

अंग्रेजी सैन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सन् 1774 में सैन्य संस्थानों में कुछ अश्व प्रजननशालायें प्रारंभ की गयी। सन् 1783 तक भारत में एक भी भारतवासी पशु चिकित्सक नहीं था। पशु चिकित्सा विज्ञान में प्रथम प्रशिक्षण सन् 1821 में डा0 जे0टी0 हडसन द्वारा आयोजित किया गया। ये तत्कालीन गवर्नर जनरल के अंगरक्षक के पशु चिकित्सक थे। प्रशिक्षुओं को भारतीय अश्ववाहिनी कोर में उपसहायक पशु चिकित्सक पद पर नियुक्ति मिलती थी।

सन्	महत्वपूर्ण विवरण
1827	सैन्य पशु चिकित्सा विभाग की स्- थापना
1862	पूना में पशु चिकित्सा पाठशाला का प्रारम्भ
1869	गोवंश प्लेग आयोग की नियुक्ति
1879	हापुड़ में पशु चिकित्सा पाठशाला का प्रारम्भ
1881	अजमेर में पशु चिकित्सा पाठशाला का प्रारम्भ
1888	शिमला में पशु चिकित्सा महाविद्यालय की स्थापना
1889	लाहौर में पशु चिकित्सा पाठशाला का प्रारम्भ
1809	पूना में केन्द्रीय जीवाणु विज्ञान प्रयोगशाला का प्रारम्भ
1886	बम्बई में पशु चिकित्सा विद्यालय की शुरूआत
1892	बंगाल पशु चिकित्सा महाविद्यालय की शुरूआत
1902	मद्रास पशु चिकित्सा महाविद्यालय की शुरूआत
1900	पशु चिकित्सा महाविद्यालयों के प्राचार्यों की बैठक जिसमें 3 वर्षीय पशु विज्ञान का पाठ्यक्रम तैयार हुआ।
1930–31	मद्रास पशु चिकित्सा महाविद्यालय द्वारा पाठ्यक्रम संशोधित एंव चार वर्षीय बी .वी.एस.सी. की शुरूआत।
1942	पंजाब पशु चिकित्सा महाविद्यालय लौहार की पंजाब विश्वविद्यालय से सम्बद्ध किया गया।
1946	हैदराबाद में पशु चिकित्सा महाविद्यालय की शुरूआत।
1947	मथुरा में पशु चिकित्सा महाविद्यालय की शुरूआत।

आजाद भारत में पशु चिकित्सा शिक्षा का विकास–

सन् 1947 तक देश में कुल 6 पशु चिकित्सा महाविद्यालय थे जिसमें छात्रों की अन्तर्ग्रहण क्षमता 300 थी। लाहौर पशु चिकित्सा महाविद्यालय के पाकिस्तान में चले जाने कारण 1948 में हिसार में एक पशु चिकित्सा विज्ञान महाविद्यालय खोला गया। असम एवं जबलपुर में 1948, बीकानेर में 1954, त्रिचूर, तिरूपति, महू तथा भुवनेश्वर में 1955 में नये महाविद्यालय खोले गये।

इलाहाबाद कृषि संस्थान नैनी में 1924 से डेरी विज्ञान में 6 महीने का प्रशिक्षण कार्यक्रम 1924

में शुरु किया गया। जो कि कालान्तर में आई.डी.डी. के रूप में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा 2 वर्ष का डिप्लोमा कार्यक्रम सन् 1987 तक भारत के पाँच स्थानों पर संचालित होता रहा। 1984 में डेरी डिप्लोमा कार्यक्रम भारत सरकार ने बन्द कर दिया था तथा विभिन्न प्रदेशों में डेरी प्रौद्योगिकी के स्नातक पाठ्यक्रम शुरू किये गये।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने पचास के दशक में प्रयत्न करके चार वर्षीय मॉडल पाठ्यक्रम विकसित किया जिसे सभी पशु चिकित्सा महाविद्यालयों ने लागू किया। इसमें कुल 3730 संपर्क घंटे (जिसमें 1110 घंटे मूलभूत विज्ञान, 805 घंटे पशुपालन तथा 1815 घंटे पशु स्वास्थ्य) निर्धारित किये गये। 1955–56 में देश में कुल 14 महाविद्यालय थे 1960 में कुल 17 हो गये जिसमें एक अनूठा पशु चिकित्सा महाविद्यालय पंतनगर में खोला गया

क्र. सं.	विवरण	अध्यक्षता	वर्ष
1.	अधिष्ठाता समिति	डा0 एम0एस0 रंधावा	1976
2.	अधिष्ठाता समिति	डा0 एन0के0 राव	अप्रैल 1979
3.	अधिष्ठाता समिति	डा0 कीर्ति सिंह	1991
4.	अधिष्ठाता समिति	–	21–22 फरवरी 2007
5.	अधिष्ठाता समिति	डा0 राम बदन सिंह	22 फरवरी 2017

वर्तमान में देश में लगभग तीन दर्जन पशु चिकित्सा महाविद्यालय, लगभग एक दर्जन डेरी महाविद्यालय तथा लगभग इतने ही मत्स्यकी विज्ञान महाविद्यालय है। भारत में रा0डे0अनु0सं0 करनाल, भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान परिषद बरेली तथा के0मा0अनु0सं0 मुम्बई जैसे तीन मानद विश्वविद्यालय हैं। इसके अलावा वर्तमान में अधिकतर राज्यों में पशु चिकित्सा महाविद्यालयों को विश्वविद्यालय में तब्दील कर दिया गया है।

संन्दर्भ–

1. डा0 शीतला प्रसाद वर्मा (2005) प्राचीन काल में डेरी रसायन विज्ञान का स्वरूप व विकास विज्ञान वर्ष 91 अंक–6 सितम्बर 2005 पृ0 11–12
2. हैण्डबुक ऑफ एनिमल हस्बैन्ड्री भाग–2 (2016) प्रकाशित भा0कृ0अनु0 पं0, नई दिल्ली पृ0 420–433
3. डा0 रामाधार सिंह (2010) आधुनिक पशु उत्पादन एवं प्रबन्धन प्रकाशन भा0कृ0अनु0पं0 नई दिल्ली, पृ0–323–351

कृषि रक्षा रसायनों का सही प्रयोग

डॉ0 हेमलता पन्त एवं डॉ0 डी0 प्रसाद

असिस्टेंट प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान विभाग

सी. एम. पी. पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ0प्र0)

एवं पूर्व अध्यक्ष, भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली

आज किसान जागरूक हो गये है । अपनी खेती से भरपूर उत्पादन प्राप्त करने के लिए उन्नतशील बीज, खाद, उर्वरक व कृषि रसायनों का प्रयोग कर रहे है, लेकिन कीट, बीमारी और खरपतवारनाशी रसायनों के असंतुलित प्रयोग से कृषि लागत अधिक, पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव, मानव जीवन पर इसका दुरूप्रभाव पड़ रहा है। फसलों पर कृषि रसायनों का अधिक मात्रा में प्रयोग सही समय पर न करने, प्रयोग करने के पूर्व व बाद फसल की स्थिति का ध्यान न रखने से फसलों पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है।

कृषि रसायनों का घोल तैयार करने की विधिः

यदि फसल पर फफूँदी द्वारा बीमारी लगी हो फफूँदीनाशी डाइथेन M-45 या डाइथेन Z-78 के 0.25% का घोल बनाकर छिड़काव करें। 0.25% का घोल बनाने के लिए 1 लीटर पानी में 2.5 ग्राम दवा मिला लें। जितनी आवश्यकता हो उतना घोल बना ले। यदि आपको 1000 लीटर का घोल बनाना है तो 1000 लीटर पानी में 2.5 ग्राम डाईथेन M-45 दवा डाल दे जो घोल तैयार हो 0.25% का होगा। इसी प्रकार से कीटनाशी का प्रयोग करना है जैसे–दीमक का नियंत्रण करना है तो क्लोरपायरीफास दवा का 0.25% का घोल बनाये। इसके लिए 2.5 मिली दवा प्रति लीटर पानी की दर से मिलाकर प्रयोग करें। अधिक मात्रा में दवा का प्रयोग करने से अधिक लागत आती है और पर्यावरण प्रदूषित होता है। साथ ही साथ कम सांन्द्रता का घोल होने पर कीट व बीमारी पर प्रभाव नहीं पड़ता है। यह भी ध्यान दें कि कीटनाशी का प्रयोग सदैव आर्थिक देहली स्तर (Economic Threshold Level) पर ही करें। इसके बाद करने पर फसल का नुकसान होगा।

कृषि रसायनों के खरीदते समय सावधनियाँ–

कीटनाशियों के डिब्बों पर त्रिभुज के आकार का रंगीन निशान बना होता है–हरा, नीला, पीला और लाल। सदैव हरा रंग के निशान वाली डिब्बे को खरीदना चाहिए। हरा रंग का न मिलने की दशा में नीला और उसके बाद पीला रंग के डिब्बे खरीदे और अन्त में लाल चिन्ह के डिब्बे ले क्योंकि

हरें रंग के चिन्ह वाले डिब्बे सबसे कम हानिकारक और लाल चिन्ह के डिब्बे वाले रसायन सबसे अधिक स्तनधारियों के लिए हानिकारक होते है। सदैव पक्की रसीद दुकानदार से ले। दवा खरीदते समय इस बात का ध्यान दें कि दवा कब की बनी है, दवा के प्रयोग की समय बीत जाने पर फसल पर प्रयोग करने से प्रभावशाली असर नहीं पड़ता है। डिब्बे या बोतल के ऊपर दवा का नाम बनाने की तिथि इत्यादि नहीं होने पर दवा का प्रयोग कदापि न करें क्योंकि सही दवा के स्थान मिलावट होने की सम्भावना होती है। कृषि रसायनों को अलग–अलग समूह के बदल– बदल कर प्रयोग करें।

घोल बनाते समय सावधनियाँ–

कृषि रसायनों का घोल हमेशा खुले हवा में बनाये क्योंकि श्वास द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर हानिकारक प्रभाव डालता है। घोल को मिलाने के लिए कभी भी हाथ का प्रयोग न करे, हमेशा लकड़ी के डंडे या लोहे की छड़ से चलाएं। दवा को किसी भी दशा में सूघना या चखना नहीं है। घोल बनाते समय कृषि रसायन की उचित मात्रा ही आवश्यक पानी में मिलाएं। कभी भी रसायन की मात्रा ज्यादा नहीं होनी चाहिए क्योंकि ज्यादा साद्रंता से विधि के जलने का डर रहता है। डिब्बे को सावधानी से खोले शरीर पर न गिरें।

कृषि रसायनों के प्रयोग के समय भी कुछ अन्य सावधानियाँ

जितनी आवश्यकता हो उतना ही घोल बनाएं ज्यादा नहीं। कभी भी हवा के विपरीत दिशा में छिड़काव न करें। छिड़काव हमेशा शाम को करें अर्थात् घोल वाले रसायनों का प्रयोग शाम के समय और पाउडर फार्म वाले कृषि रसायनों का छिड़काव सदैव सुबह के समय करें। छिड़काव करते समय पत्तियों पर ओस या पानी की बूंदे नहीं होनी चाहिए इसीलिए शाम को किया जाता है। जबकि बुरकाव के समय पत्तियों पर ओस पड़ी रहे तो अच्छा होता है इसलिए सुबह किया जाता है। सब्जियों व फलों पर इस प्रकार की दवाओं का प्रयोग न करें जिनका असर ज्यादा दिनों तक रहता है। अच्छा रहेगा कि दवा छिड़काव के पूर्व सब्जी तोड़ ले जैसे–बैंगन, टमाटर भिण्डी आदि को। और उसके बाद छिड़काव करें।

कृषि रसायनों के प्रयोग के बाद भी की कुछ सावधनियाँ

छिड़काव के बाद जिस खेत में छिड़काव किया गया है उसमें बोर्ड लगा दे कि दवा का प्रयोग हुआ है। जो घोल छिड़काव के बाद बच गया हो बेकार जगह में गड्डा खोदकर घोल को दबा दें।

रसायनों के भण्डारण का तरीका–

कृषि रसायनों को जहाँ तक हो आवश्यकतानुसार ही खरीदें। किभी भी आवश्यकता से अधिक दवा न लें। इन दवाओं को इनके ही डिब्बे में रखना चाहिए कभी भी दवा आदि की शीशियों में नहीं

रखना चाहिए क्योंकि भूल से इसे टानिक समझकर कोई पी न लें। जहाँ तक सम्भव हो कृषि रसायनों को बच्चों के पहुँच से दूर तालें में बंद करके ऊंचे स्थान पर रखे।

कृषि रसायनों के प्रयोग में अन्य सावधनियाँ–

- कृषि रसायनों का छिड़काव कभी भी बीमार या कमजोर आदमी, बच्चा, दूध पिलाती हुई या गर्भवती औरतों को नहीं करना चाहिए।
- छिड़काव करने वाले व्यक्ति को 1 दिन में 5 घण्टे से अधिक कार्य नहीं करना चाहिए।
- छिड़काव के समय या घोल बनाते समय व्यक्ति को दवा का कुप्रभाव हो जाए तो तुरन्त डाक्टर को दिखाए।
- अनाज में न मिलाए।
- सोने वाले कमरे में कृषि रसायनों को कदापि न रखे।
- शरीर पर खुले घाव नहीं होने चाहिए प्रयोग करने वाले व्यक्ति के।
- कृषि रसायनों की सांद्रता का हमेशा ध्यान रखे।
- घोल बनाते समय या छिड़काव के समय कृषि रसायन शरीर पर पड़ जाए तो तुरन्त साबुन से साफ कर लें।
- दवा की शीशी या डिब्बे को जो खाली हुए हो उसे तोड़कर या छेद करके मिट्टी में दबा दें।
- जिस बर्तन को घोल बनाने में प्रयोग कर रहे तो उसको घर में कभी भी कदापि प्रयोग न करें।
- कृषि रसायनों के असावधानी या अज्ञानतापूर्व प्रयोग प्राणधातक भी हो सकता है क्योंकि अधिकांश विषैली प्रवृत्ति के होते है।

डॉ. हेमलता पन्त का आमंत्रित व्याख्यान

अर्न्तराष्ट्रीय पर्यावरण दिवस, 05 जून 2019 को क्योरर संस्था, प्रयागराज के सिल्वर जुबली समारोह में डॉ. हेमलता पन्त ने 'वैश्विक उष्मन तथा पर्यावरण' पर अपना आमंत्रित व्याख्यान दिया । यह कार्यक्रम विज्ञान परिषद, प्रयागराज के सभागार में सम्पन्न हुआ ।

बधाईयाँ
संयुक्त संपादक

सूरन की वैज्ञानिक खेती

अनिल कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर/जूनियर साइंटिस्ट, हाई माउंटन एरिड एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट, शेर–ए–कश्मीर यूनिवर्सिटी ऑफ एग्रीकल्चर साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, लेह – 194191

ओल (एमारफोफैलस कैम्पेनुलेटस) एक बहुवर्षीय भूमिगत सब्जी है, जिसका वर्णन भारतीय धर्म ग्रन्थों में भी पाया जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों में ओल के भिन्न–भिन्न नाम है जैसे उत्तरी भारत में इसका नाम सूरन या जिमीकंद है। पहले इसे गृहवाटिका में या घरों के अगल–बगल की जमीन में ही उगाया जाता था, परन्तु अब ओल की व्यवसायिक खेती होने लगी है। जिससे कि ओल एक महत्वपूर्ण नगदी फसल बन गयी है।

उत्पत्ति एवं वितरण–

ओल की लगभग 90 प्रतिशत जातियाँ पायी जाती है, जिसका उत्पत्ति स्थान एशिया और अफ्रीका है। हमारे देश में आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में इसकी खेती के प्रति कृषकों में उत्साह है।

भोज्य तत्व व औषधीय गुण–

ओल के भूमिगत धनकंद मुख्यतः भोज्य तत्वों तथा औषधीय गुणों के कारण अपना विशेष महत्व रखते है। ओल केवल एक सब्जी ही नहीं बल्कि यह एक बहुमूल्य जड़ी–बूटी भी है, जो हमें स्वस्थ तथा निरोगी रखने में मदद करती है। ओल के लगातार सेवन से रक्त विकारनाशक, कब्जनाशक, बवासीर, पेचिश, दमा, फेफड़े की सूजन, ट्यूमर, पेट के विकार और दुर्बलता आदि अनेक रोगों में लाभदायक तथा पुष्टि कारण होता है।

भूमि व जलवायु–

ओल की खेती किसी भी प्रकार की मिट्टी में की जा सकती है, फिर भी इसकी अच्छी खेती के लिये बलुई दोमट मिट्टी जिसमें कार्बनिक तत्व प्रचूर मात्रा में हो तथा जल के अच्छे निकास की सुविधा हो, उपयुक्त होती है। फसल वृद्धि के समय खेत में जल का जमाव नहीं होना चाहिये। मिट्टी में नमी धारण की क्षमता होनी चाहिये। मिट्टी का पी0एच0 मान 6–8 तक होना चाहिये।

जलवायु–

ओल की फसल को गर्म जलवायु अधिक पसन्द है। ओल के पौधों की अच्छी वृद्धि के लिये 20–42 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान तथा 60–85 प्रतिशत अपेक्षित आर्द्रता आवश्यक है। पौधे की वानस्पतिक वृद्धि के लिये उष्ण और आर्द्र जलवायु तथा कंदों के विकास के लिए ठंडी और शुष्क जलवायु उपयुक्त होती है। अच्छे विखराव के साथ 1000–1500 मिमी0 वार्षिक वर्षा, फसल वृद्धि तथा कंद उत्पादन विकास में सहायक होती है।

भूमि की तैयारी–

खेत को एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से तथा दो बार देशी हल से जोतकर पाटा चलाकर मिट्टी भुरभुरी तथा समतल बना लेनी चाहिये। अन्तिम जुताई के समय मिट्टी में 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से गोबर की सड़ी खाद के साथ–साथ मुर्गी की खाद एक टन अवश्य डालनी चाहिये, इससे उपज में भारी वृद्धि होती है।

खाद व उर्वरक–

ओल की खेती में मुर्गियों की बीट तथा हरी खाद के इस्तेमाल से उत्साहवर्धक परिणाम मिले है। कार्बनिक खाद के रूप में गोबर की खाद 20–25 टन, रासायनिक खाद के रूप में 150 किलोग्राम नत्रजन एवं 60 किलोग्राम फास्फोरस तथा 150 किलोग्राम पोटास प्रति हेक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिये।

बीज बुवाई–

ओल की फसल के लिए बीज के रूप में छोटे–छोटे घनकंदों का उपयोग किया जाता है। बीज के लिए रोगमुक्त कन्द का प्रयोग करना चाहिये। ओल की व्यवसायिक खेती के लिए बड़े आकार के घनकंदों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर बुवाई के लिए प्रयोग करते है। जिसका वजन 500–1000 ग्राम के बीच हो। एक हेक्टर भूमि के लिए लगभग 60–80 कुन्टल घनकंदों की आवश्यकता होती है। गाय के गाढ़े घोल में मैनकोजेब (0.2 प्रतिशत) तथा मोनोक्रोटोफास (0.05 प्रतिशत) मिलाकर कटे हुए कंदों के टुकड़ों को उसमें डुबाकर उपचारित कर लेना चाहिये।

इसको लगाने के लिए 60X60X45 सेमी0 आकार के गढ्ढे खोद लिये जाते है। पंक्ति तथा पौधे से पौधे की दूरी 90 सेमी0 रखते है। रोपाई के 45–60 दिन के बाद घनकंदों का अंकुरण हो जाता है।

सामान्यतः सूरन की बुआई फरवरी से मार्च के महीने में की जाती है, परन्तु जहाँ पर सिंचाई की उचित व्यवस्था नहीं होती है। ऐसे स्थानों पर जून से जुलाई के महीने में सूरन की बुआई उचित होती है।

उन्नत किस्में–

1. गजेन्द्र– भारत में प्रचलित ओल की किस्मों में यह सबसे अच्छी है। इसकी औसत उपज क्षमता 800–1000 कुन्टल/हेक्टर है।
2. कोवूर– इसके कन्द बड़े एवं समान आकार के होते है।
3. संतरागच्ची– इसकी उपज क्षमता 300–400 कुन्टल/हेक्टर है।
4. श्री पद्मा– इसकी उपज क्षमता 700–800 कुन्टल/हेक्टर है।

निराई–गुड़ाई व सिंचाई–

ओल की फसल को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिये। इस फसल पर निराई–गुड़ाई का असर ज्यादा होता है।

पहली निराई–गुड़ाई फसल की बुवाई के 30–35 दिनों के बाद करनी चाहिये। दुसरी बुवाई के 60–65 दिनों के बाद करनी चाहिये।

यदि ओल की बुआई मार्च के महीने में की जाती है, तो बुवाई के बाद एक हल्की सिंचाई अवश्यक करें। इसके बाद 10–12 दिनों पर ओल की फसल की सिंचाई बरसात होने तक करना अनिवार्य है। फसल खुदाई के ठीक एक सप्ताह पहले हल्की सिंचाई करने से खुदाई में आसानी रहती है।

खुदाई–

दिसम्बर–जनवरी में फसल पककर तैयार हो जाती है। फसल तैयार होने का संकेत पत्तियों के पीले पड़कर सूख जाने से मिलता है। रोपाई के 7–10 माह में फसल पककर तैयार हो जाती है। खुदाई करते समय ध्यान रखना चाहिये कि कंद कटने न पावें। खुदाई के बाद घनकंदों के ऊपर से मिट्टी साफ कर लेनी चाहिये तथा जड़ों को तोड़ देना चाहिये।

ऊपज–

अच्छी फसल होने पर रोपे गये घनकंदों की मात्रा तथा पैदावार का अनुपात 1:10 का होता है। 500 ग्राम वजन का घनकंद रोपण करने पर प्रति हेक्टर 40–60 टन पैदावार मिलती है।

व्यवसायिक स्तर पर 50 टन ओल की पैदावार से कुल रु0 2 लाख की आय प्राप्त होती है तथा रु0 1 लाख की शुद्ध आय प्राप्त होती है।

भण्डारण–

अधिक समय तक भंडारित करने के लिए घनकंदों को 10–12 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान पर

रखना चाहिये।

रोग एवं कीट–

1. **कालर सड़न**– यह फफूंदजनित रोग है। इस रोग का प्रकोप 2–3 माह के पौधे पर होता है। इसका लक्षण जमीन से लगे हुए तने में सड़न शुरू होता है। जिससे पत्तियाँ पीली पड़ जाती है तथा पूरा पौधा सूख जाता है।

रोकथाम– बीमारी के लक्षण दिखाई देते ही 0.2 प्रतिशत केप्टान का प्रयोग भूमि में करना चाहिये।

2. **विषाणु रोग**– इस रोग से पत्तियाँ छोटी, खुरदरी व मुड़ जाती है। इससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है तथा घनकंद छोटे रह जाते है।

रोकथाम– इस रोग की रोकथाम हेतु स्वस्थ घनकंद का प्रयोग बुवाई के लिए करते है तथा कीटनाशी का प्रयोग करना चाहिये।

3. **कीड़े**– ओल की फसल को वैसे कोई कीड़ा अधिक नुकसान नहीं पहुँचाता है लेकिन एफिड, माइट, थ्रिप्स, ओल की सूड़ी व मिली बग आदि का प्रकोप कभी–कभी होता है।

रोकथाम– इसकी रोकथाम हेतु मोनोक्रोटोफास नामक दवा (0.05 प्रतिशत) के घोल का छिड़काव अवश्य करें।

मशरूम उत्पादन का प्रशिक्षण

सोसाइटी ऑफ बॉयलॉजिकल साइंसेज एण्ड रूरल डेवलेवमेन्ट, प्रयागराज में दिनांक 23 सितम्बर 2018 को ओयस्टर मशरूम उत्पादन का प्रशिक्षण दिया गया ।

–हर्षिता पन्त

लाल चुकन्दर के विभिन्न स्वास्थ्य संबधी पहलुओं पर नजर

आशुतोष कुमार मल्ल, वरूचा मिश्रा, अश्वनी कुमार[1], मुकेश कुमार, अभिषेक सिंह व ए. डी. पाठक

भा. कृ. अनु. स.–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, (उ.प्र.)

[1]उ0प्र0 कृषि अनुसंधान परिषद, लखनऊ–226010, (उ.प्र.)

लोकप्रिय रूप से इसे बीट के नाम से जाना जाता हैं। इसको हिन्दी भाषा में चुकन्दर, स्पैनिश में रेमोलाचास व चीनी में हांग कई टूर कहा जाता है। लाल रंग के होने की वजह से इसे कई लोग खून में वृद्धि करने वाला फल भी मानते हैं। आयुवेदाचार्यों के अनुसार दो टुकड़े चुकन्दर के नियमित सेवन से शरीर की कई बीमारियों से निजात पाया जा सकता है क्योंकि यह बीमारियों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाता है। ठंडी तासीर लिए चुकन्दर को अधिकतर रस व सलाद के रूप में उपयोग किया जाता है।

औषधीय उपयोग व उसका प्रभाव–

मध्य युग से चुकन्दर का उपयोग न केवल खाद्य पदार्थ के रूप में अपितु कई बीमारियों से निजात पाने के लिए भी किया जाता रहा है। चुकन्दर शरीर के लिए सबसे लाभदायक सब्जियों में से एक सब्जी है। भोजन में इसके नियमित सेवन से शरीर में खून की मात्रा में वृद्धि होती है। लाल चुकन्दर के सेवन से निम्नलिखित बीमारियों से लड़ा जा सकता है–

एनीमिया के रोग– भारतीय परिवारों में पुराने समय से इसका सेवन एनीमिया के रोग से मुक्त होने के लिए किया जाता रहा है। चुकन्दर में आयरन की मात्रा भरपूर रूप से पायी जाती है जो कि खून बढ़ाने में अहम योगदान देता है।

स्तन व प्रोस्टेट कैंसर– इसके रोज सेवन से स्तन व प्रोस्टेट कैंसर जैसे रोगों की रोकथाम की जा सकती है। चुकन्दर में पाये जाने वाला बेटासायनिन रोगों की रोकथाम में भूमिका निभाता है। साथ ही यह त्वचा के कैसर में भी लाभदायक होता है। इसके सेवन से कैंसर कोशिकोओं (सेल) में वृद्धि नहीं होती है।

लीवर संबधी रोग– इसका सेवन करने से लीवर का स्वास्थ्य बना रहता है। इसमें पाये जाने वाले

विटामिन बी फ़ाईबर, आयरन व एंटीऑक्सीडेट लीवर संबंधी रोगों को रोकने में तथा लीवर को स्वस्थ्य बनाये रखने में लाभकारी होते हैं। नियमित रूप से इसको अपने भोजन में शामिल करने से यह जिगर से पित्त के स्त्राव को बढ़ाता है एवं विशाक्त पदार्थों को समाप्त करने में सहायक होता हैं।

मस्तिष्क स्वास्थ्य– इसका रस मस्तिष्क स्वास्थ्य के लिय भी लाभदायक होता है। चुकन्दर के रस को डिमेंशिया के शुरूआती चरणों के लिए लाभकारी पाया गया है। अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि चुकन्दर के रस का सेवन करने से दिमाग स्वस्थ व संज्ञानात्मक कार्य की तरफ अग्रसर होता है। चुकन्दर के रस में पाये जाने वाले नाइट्रेट शरीर में जा कर नाइट्रिक ऑक्साइड में बदल जाता है जिससे मस्तिश्क कोशिकओं का एक दूसरे के साथ संवाद करने में आसानी होती है जिससे मस्तिष्क तेज व स्वस्थ्य बना रहता है।

कब्ज व अन्य पेट संबंधी रोग– नियमित रूप से इसके सेवन से पाचन क्रिया में सुधार आता है व रक्त की गुणवत्ता भी अच्छी होती है। इसके साथ ही यह कब्ज व अन्य पेट संबंधी रोगों के निवारण में भी सहायक होता है। इसमें पाये जाने वाला फ़ाईबर आंत की सफाई करने में सहायता करता है।

वजन घटाने– चुकन्दर में फ़ाईबर की मात्रा अधिक होती है जिससे यह वजन घटाने में अहम भूमिका निभाता है। इसका उपयोग मुख्य रूप से कृत्रिम स्वीटनर को हटाने में किया जा सकता है क्योंकि इसमें स्वयं ही मिठास होती है।

एंटीएजिगं के रूप में– उम्र के बढ़ने से त्वचा में ढीलापन आ जाता है जो कि चुकन्दर के सेवन करके दूर किया जा सकता है। चुकन्दर में विटामिन एवं कैरोटिन होते हैं जो आपको अंदर से लाभ पहुंचाते हैं। साथ ही इसमें पाये जाने वाले एटीऑक्सीडेट झुर्रियों को कम करने में भी सहायक होते है।

जोडों के दर्द– जोड़ों को दर्द बढ़ती उम्र के साथ एक आम बात है। यह ज्यादातर 50 की उम्र की महिलाओं में दिखता है। ऐसी स्थिति में चुकन्दर का रस नियमित रूप से सेवन करने से जोड़ो के दर्द में आराम ही नहीं अपितु हड्डियों को मजबूत भी करती हैं।

किडनी में फायदेमंद– चुकन्दर का सेवन किडनी को साफ व स्वस्थ रखने में लाभकारी होता है। इसमें पायी जाने वाली क्लोरीन लीवर व किडनी को स्वस्थ बनाये रखने में योगदान करती है।

चुकन्दर की पत्तियों में भी पोशक तत्व पाये जाते हैं जो हमें कई रोगों से रोग मुक्त करते हैं। इसमें आयरन, कैल्शियम और विटामिन पाये जाते हैं। चुकन्दर की पत्तियों के सेवन से भी खून की कमी दूर होती है। इसके साथ ही यह सौंदर्य के लिए भी लाभकारी होती है। ऐसा माना गया है कि यदि आप इसके पत्तियों का रस प्रतिदिन सेवन करें तो आपको कोई भी बिमारी का भय नहीं होगा।

गंभार – कृषि वानिकी हेतु एक बहुद्देशीय वृक्ष

अनुभा श्रीवास्तव, रामबीर सिंह[1], अनिता तोमर, विनय बाबू तथा अमित कुमार

पारि – पुर्नस्थापन वन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज, (उ.प्र.)

[1]वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून, (उत्तराखण्ड)

परिचय –

गंभार वर्बिनेसी कुल का पौधा है। इसका वैज्ञानिक नाम मैलाइना अरबोरिया है। इसका प्रचलित अन्य नाम गमारी, खमेर, सफेद सागौन अथवा पेनम है। गंभार की कुल 30 प्रजातियॉ है। कुछ उप प्रजातियॉ भी हैं। यह प्राकृतिक रूप से एशिया के कटिबन्धीय तथा उष्णकटिबन्धीय भाग – पाकिस्तान, भूटान, नेपाल, भारत, थाइलैण्ड, इण्डोचीन, फिलीपीन्स, मलाया, उत्तरी एवं दक्षिणी चीन, माक्रोनेशिया आदि में पाया जाता है। मैलाइना अरबोरिया मझोले से वृहत आकार का पौधा है। यह अनुकूल दशा में 30 मीटर या उससे अधिक ऊचाई प्राप्त करता है।यह बहुत तेजी से वृध्दि करने वाला पौधा है। पौधे की छाल गहरे पीले रंग की धब्बे की तरह होती है। पौधे में शाखाऍ कई होती हैं। इसकी पत्तियॉ 5–15 सेमी लम्बी होती है। फूलों का रंग लाल अथवा भूरा और पीला होता है। फल ड्रूप होता है यह 1.8–2.5 सेमी लम्बा होता है। कृषि वानिकी हेतु यह एक बहुद्देशीय वृक्ष है।

पुर्नउत्पादन –

इस प्रजाति को कृत्रिम एवं प्राकृतिक दोनो विधियों से पुर्नउत्पादित किया जा सकता है। प्राकृतिक पुनर्उत्पादन बीज कापीज और रूट सकर्स (मूल चूशक द्वारा) किया जाता है। कृत्रिम पुनर्उत्पादन बीज रोपण, ठूँठ रोपण, सम्पूर्ण पौधा स्थानान्तरण और वर्धी प्रजनन द्वारा किया जाता है।

बीजों का संग्रहण –

पशुपन सामान्यतः तीन से चार वर्षों में प्रारम्भ होता है। यह प्रत्येक वर्ष प्रचुर मात्रा में फल देता है। पशुपन सामान्यतः फरवरी माह से प्रारम्भ होता है और परिपक्व फल अप्रैल से जून के माह तक प्राप्त होता है। बीज मई–जून माह में एकत्रित किया जाता है। फल एकत्रित करने के बाद गूदे से बीज को पृथक कर देना चाहिए। गुदाविहीन बीज को सूर्य के तेज प्रकाश में सुखाना चाहिए। सूखे हुए बीज को जूट के बोरों में संग्रहित करना चाहिए। ताजे बीजों का उपयोग पौधों के उत्पादन के लिए किया जाता है जिनमें लगभग 90% तक अंकुरण हो जाता है। ताजे बीजों का रंग पीला होता है। भूरे अथवा काले रंग के फलों के बीज का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

रोपण तकनीक–

बीज को 7.5 सेमी X 7.5 सेमी की दूरी पर तथा 1– 2 सेमी की गहराई में उठे हुए बेड्स में धूप में लगाते हैं। बीजों का अंकुरण 10–15 दिनों में प्रारम्भ होता है।15 सेमी ऊँचाई वाले पौधे को पालीथीन बैग में स्थानान्तरित किया जाता है।

पौधे रोपण तकनीक–

सीधे बुआई द्वारा .

व्यवसायिक रोपण तैयार करने की यह आसान विधि है, जिसमें बीजों की बुआई चप्पों में करते हैं। प्रत्येक चप्पे का आकार 0.3 वर्गमीटर होता है जिनमें 1.8 X 1.8 मीटर का अन्तराल होता है। इन चप्पों को 0.3 मीटर गहराई में खोदकर लगभग एक महीने तक छोड दिया जाता है, तत्पश्चात उर्वर मिट्टी से भर कर इन चप्पों को भूतल से 7.5 सेन्टीमीटर ऊँचा उठा दिया जाता है। मानसून आने पर 3–4 बीज प्रत्येक चप्पे में 1– 2.5सेमी गहराई में बुआई की जाती है। चप्पा बुआई में प्रति हेक्टेयर 14 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है।

रेखीय बुआई –

इसमें 0.7 मीटर का अन्तराल रखा जाता है।

ठूँठ रोपण –

ठूँठ रोपण में एक वर्ष आयु वर्ग के पौधे से ठूँठ एकत्रित कर रोपण किया जाता है। मई माह में तैयार पौधे का उपयोग अगले वर्ष जून माह में ठूँठ रोपण में किया जाता है।

पूर्ण स्थानान्तरण –

कृत्रिम पुनरूत्पादन की यह सर्वाधिक प्रचलित विधि है इसमें बीज द्वारा तैयार पौधे को बिना जड. काटे मिट्टी सहित एकत्रित किया जाता है। मिट्टी का गोला बनाकर मानसून के पहले रोपण किया जाता है। यह विधि 95% तक सफल होती है।

वर्धी प्रजनन –

वृहत प्रजनन की यह बहुत सफल विधि है। यह दोनो विधियों –. सूक्ष्म एवं वृहत प्रजनन/कटिंग द्वारा किया जा सकता है। सूक्ष्म प्रजनन की विधि में विभिन्न प्रकार की कलमों को उपचारित करना इस प्रजाति के क्लोन्स के उत्पादन की बेहद सफल विधि है।

चक्रण (रोटेशन) –

सामान्यतः लुग्दी काश्ठ एवं शानवुड का चक्रण क्रमशः 6 एवं 10 वर्षों में किया जाता है। ईधन काश्ठ के लिए 5–10 वर्षों का चक्रण सामान्य होता है। एक उपज जिसका चक्रण 10 वर्षों का

है, इसके 5वें वर्ष में 50% प्रथम विरलन एवं अन्य 50% को सातवें वर्ष में विरलित किया जाता है। पौध एवं ठूँठ का रोपण तीसरे चक्रण के लिए किया जाता है।

आर्थिक महत्व –

गंभार की लकड़ी आदर्श प्रकार की होती है। इसका तना सीधा होता है जो घरेलू एवं वाणिज्य कार्यो तथा इन्जीनियरिंग उपकरण बनाने में उपयोगी होता है। गंभार की लकड़ी में ऊष्मा का संचरण बहुत कम होता है। एसिड वैल्यू 5.36 होता है जो अच्छी किस्म की लकडी की विशेशता है। आग तथा दीमक के प्रति सहनशीलता होती है। गंभार का प्रयोग डोरफ्रेम, शटर, खेल – कूद के सामान, प्लाईवुड, पैकिंग, माचिस उद्योगों में, कृत्रिम अंग बनाने में, वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, तथा वाद्ययंत्रो को बनाने में किया जाता है।

औषधीय गुण –

गंभार की कोमल पत्तियो को गाय के दूध और चीनी का घोल सुजाक/गोनोरिया में लाभकारी होता है। पत्तियों का रस फोडे फुन्सी के घाव धुलने के कार्य मे लाभदायक होता है।सरदर्द करने पर मुलायम पत्तियों का पेस्ट मस्तक पर रखने से आराम मिलता है। गंभार का प्रयोग पेट की टॉनिक, तंत्रिका तंत्र की दवा बनाने में किया जाता है। दशमूला बनाने में प्रयोग किया जाता है। जड तथा छाल का प्रयोग सर्प के काटने पर उपचार में किया जाता है। इसका फल मीठा – कसैला स्वाद के साथ ठंडा होता है।बुखार के समय शरीर के ताप नियंत्रण करनें में पत्तियों का पेस्ट प्रयोग किया जाता है।

गंभार का सामाजिक वानिकी/एग्रोफारेस्ट्री में प्रयोग –

गंभार का पौधा बहुत तेजी से बढता है। इसका प्रयोग हम वृक्षारोपण करने मे कर सकते हैं। यह वर्षा ऋतु में धान के साथ शरद ऋतु में गेहूं के साथ अन्तः सस्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके साथ सब्जियों वाली फसलों को आसानी से उगाया जा सकता है। इसको लगाने से भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है। गंभार के साथ खरीफ के मौसम में मूंग उड़द तथा मूंगफली रबी के मौसम में मटर, मेथी, मसूर, चना व जायद के मौसम में लोबिया की फसलें लगायी जा सकती हैं। वन क्षेत्र को बढाने में इसका प्रयोग किया जा सकता है। गंभार के पौधे का रोपण कर वातावरण के साथ – साथ वन क्षेत्र का विस्तार किया जा सकता है। लकड़ी की सामान्य जरूरत भी पूरी कर सकते हैं। यह मृदा के संरक्षण को बढाता है। किसानों के द्वारा अपने खेत में लगाने पर यह उन्हे कम समय में अन्य फसलों (वनी फसलों) की अपेक्षा ज्यादा लाभकारी होगा। उद्योगों के लिए कच्चा माल मिलने पर क्षेत्र में लकड़ी से सम्बन्धित उद्योग लगेंगे जिससे क्षेत्र के लोगों को रोजगार

मिलेगा।

सुरक्षा –

कल्ला या कोपल पौध या बालवृक्ष को कई बार बकरी या अन्य जानवर चर जाते हैं। अतः इन्हे बचाने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।

नाशीजीव एवं कीट –

यह प्रजाति पौध अवस्था में फ्यूजेरियम सोलेनी फफूँद द्वारा विल्टिंग (मुरझाना) बीमारी के प्रति अतिसंवेदनशील है। नासूर बनने एवं शीर्षारंभी क्षय (डाईबैंक) बीमारी बागानों में होती है, कुछ रोगजनकों द्वारा पर्ण अंगमारी और पर्ण धब्बा बीमारी फैलाई जाती है, जिनका उल्लेख भी मिलता है।

नश्वरता –

इसमें नोवरता (मोर्टेलिटी) 30–80 प्रतिशत तक होती है, जो कि रोगजनकों, वातावरण, आद्रता विज्ञान/स्थल स्वभाव के कारणों से हो सकती है। बागानों में उत्तरजीविता बढ़ाने के लिए मिश्रित कृशि उचित स्थल का चयन रोगी वृक्षों को हटाना तथा व्यवसायिक बागानों के लिये प्रतिरोधी क्लोन का चयन किया जा सकता है।

आर्थिकी –

इस प्रजाति में असाधारण रूप से तेज वृद्धि होती है, और अच्छे स्थानों पर यह 5 वर्षों में 20 मीटर तक की ऊँचाई ग्रहण कर लेती है। परिपक्व अवस्था में इसकी ऊँचाई लगभग 30 मीटर एवं व्यास 60 से.मी. तक हो जाता है। एक सामान्य से अच्छे वृक्ष में 6–9 मी. तक का सीधा लट्ठा मिलता है। कुछ वृक्ष रोपण के तीसरे वर्श में 3 मी. एवं 4.5 वर्षों में 20 मी. की ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं। गंभार की उत्पादन क्षमता कमजोर बलुई मिट्टी में 12 वर्ष में 210 घन मी./हेक्टेअर और कछारी या जलोढ़ मिट्टी में 10 वर्षों में 252 घन मी./हेक्टेअर तक मिलती है। यह प्रजाति जलोढ़ लोमी मिट्टी में उचित नमी वाले क्षेत्र में औसतन 25 घन मी./हेक्टेअर/वर्श परिमाप की काश्ठ उत्पन्न करती है।

पशुधन पोषण हेतु हरे चारे एवं प्रोटीन आपूर्ति के लिये अजोला उत्पादन तकनीक

डॉ0 विद्या सागर, डॉ0 प्रदीप कुमार एवं डॉ0 कौशल कुमार
कृषि विज्ञान केन्द्र पॉती, पोस्ट–मंशापुर–224168, अम्बेडकरनगर, उत्तर प्रदेश
नरेंन्द्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, (अयोध्या)

पूर्वी भारत के डेरी किसानों के बीच पर्याप्त चारे की खेती करना आम बात नहीं है। दाने और चारे की कमी को कम करने और पशु उत्पादन को साध्य और लाभदायक बनाने के लिए चारे के पारंपरिक स्रोत पर्याप्त नहीं हैं। इस अंतर को कम करने के लिए और गुणवत्ता के साथ समझौता किए बिना परंपरागत भोजन के पूरक या प्रतिस्थापन के रूप में गैर–पारंपरिक खाद्य संसाधनों के पूरे वर्ष उपयोग में पशुधन का अधिकतम उत्पादन सुनिश्चित करने के लिए हाल के वर्षों में ध्यान केंद्रित करने का क्षेत्र है। किसान आम तौर पर अपनी भूमि का उपयोग फसल की खेती के लिए करते हैं। परिणाम स्वरूप जानवरों को उनके राशन में पशु की आश्यकता के अनुसार हरा चारा नहीं दिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में अज़ोला एक अच्छा विकल्प है, क्योंकि यह पूरे वर्ष कम श्रम तथा भूमि के न्यूनतम उपयोग से उगाया जा सकता है भारत में पूरक संसाधनों में जलीय मैक्रोफाइट्स शामिल हैं जिनमें समृद्ध पोषक तत्व और खनिज पदार्थ हैं। दुनिया भर में और विशेषकर एशिया में, किसानों ने पशु खाद्य, हरी खाद के लिए स्वाभाविक रूप से जलीय पौधों का उत्पादन किया है। इनमें से सबसे अच्छी तरह से ज्ञात अस्थायी जलीय पौधे शामिल हैं। पानी में सलाद (पिस्टिया), जलकुंभी (इचहोर्निया), डक्विएड (लिम्ना) और अज़ोला और कुछ पानी में बढ़ते पौधे है जिन्हें वैज्ञानिकों ने उच्च पोषण मूल्य तथा इसकी तीव्र वृद्धि के कारण सुपर पौधा भी कहा है। ये जलीय पौधे पशुधन के लिए एक खाद्य संसाधन के रूप में इसकी उच्च क्षमता की संभावना है।

अज़ोला–

अज़ोला जलीय फर्न की एक प्रजाति है, जो स्वाभाविक रूप से नालियों, नहरों, तालाबों, नदियों और दलदली भूमि सहित जल निकायों में स्थिर जल में बढ़ता है। भारतीय उपमहाद्वीप में छह प्रजातियों में से "अज़ोला पिन्नाटा और "अज़ोला माइक्रोफिला हैं जिन्हें पशुधन पोषण के लिए एक खाद्य संसाधन के रूप में बेहातर उपयोग किया की सम्भावना है।

अजोला उत्पादन की विधि

अज़ोला उत्पादन के कई तरीकों से किया जा सकता है, अर्थात् सीमेंट टब, स्थायी कंकरीट टैंक, प्राकृतिक जल निकायों, भूमिगत गड्ढ़ों आदि। हालांकि, अच्छी उत्पादकता हेतु भूमिगत गड्ढ़े और ईंट से उठाए गए गड्ढ़ों की सलाह दी जाती है।

→ **बेड की तैयारी** : उपलब्ध संसाधनों और आवश्यकता के आधार पर गड्ढ़े का आकार और संख्या का चयन किया जा सकता है। खुदाई करके ईंटों की सहायता से लगभग 10 वर्ग मीटर (5 x 2 फीट) आकार एवं 20–30 सेंटीमीटर ऊँचाई का कृत्रिम टैंक बनाना है।

→ **शीट का फैलाव** : उपयुक्त आकार के सिलप्लाइन शीट या अन्य अच्छी गुणवत्ता वाले पॉलिथीन शीट को समान रूप से फैलाये जिसमें कोई छिद्र न हो तथा उसके किनारों को मिट्टी या ईंटों से ठीक से दबा दे।

→ **मृदा बिस्तर** : लगभग 30–35 कि.ग्रा. (3–3.5 कि.ग्रा वर्ग मीटर) छनी हुई उपजाऊ मिट्टी के ऊपर 1 से 2 सेंटीमीटर समतल मिट्टी का बिस्तर बनाएं।

→ **घोल को उड़ेलना** : लगभग 3 कि.ग्रा गोबर (लगभग 3 दिन पुराना) प्रति वर्ग मीटर एवं 80से 90 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से सिंगल सुपर फॉस्फेट (एसएसपी), 10–15 लीटर पानी में मिलाकर घोल बनाए और गड्ढ़े में डाल दें।

→ **पानी और अज़ोला को मिश्रित करना** : लगभग 10–12 सेमी की ऊंचाई तक गड्ढ़े में पानी भरें और करीब 1 किलोग्राम ताजा और शुद्ध अजोला माइक्रोफिला गड्ढ़े मे मिश्रित करें।

→ **आवधिक निवेश** : अज़ोला के उत्पादन को बनाए रखने के लिए, लगभग 250–300 ग्राम वर्ग मीटर गोबर और 8–9 ग्राम/वर्ग मीटर एसएसपी को हर सप्ताह मिलाना चाहिए। मैग्नीशियम, लोहा, तांबा, सल्फर आदि युक्त सूक्ष्म पोषक तत्व, साप्ताहिक अंतराल पर (10–15 ग्राम) डाला जा सकता है।

→ **जल प्रतिस्थापन** : गड्ढ़े में नाइट्रोजन का निर्माण रोकने के लिए हर 15–20 दिनों में पानी का 25 से 30 प्रतिशत पुराना पानी, ताजा पानी से बदला जाना चाहिए।

→ **मिट्टी प्रतिस्थापन** : नाइट्रोजन के निर्माण से बचने और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से बचने के लिए 30 दिनों में एक बार, लगभग 10 कि.ग्रा.की बिस्तर मिट्टी को ताजे मिट्टी से बदला जाना चाहिए।

→ **गड्ढ़े की सफाई** : हर छः महीनों में खरपतवार / कीट संक्रमण होनें से बचाव हेतु नियमित रूप से गड्ढ़ों को साफ किया जाना चाहिए और पानी और मिट्टी को बदला जाना चाहिए और नई अज़ोला माइक्रोफिला को मिलाया जाना चाहिए।

→ **अज़ोला की पैदावार** : अधिकतम रखरखाव और उपयुक्त जलवायु स्थिति में अज़ोला तेजी से बढ़ता है और 10–15 दिनों के भीतर गड्ढ़े को भर देता है और इसके बाद अजोला की पैदावार लगभग 200 – 250 ग्राम / वर्ग मीटर और 20 – 25 क्विंटल / हेक्टेयर है।

अज़ोला का पोषण मूल्यांकन–

सामान्य तौर पर अज़ोला खनिज पदार्थ में समृद्ध होता है। फर्न में कैल्शियम, फास्फोरस पोटेशियम, मैंगनीज, तांबा, मैग्नीशियम और जस्ता का समृद्ध स्रोत है। यह लिनोलिक अम्ल और कई प्रति उपचायक जैसे आवश्यक असंतृप्त अम्ल का एक बहुत अच्छा स्रोत माना जाता है। ताजा सामग्री पर, कैरोटीन सामग्री सूखे पदार्थ (डीएम) के आधार पर 206 से 619 मिली ग्राम / कि.ग्रा. तक होती है।

अज़ोला को विभिन्न पशुधन प्रजातियों को सेवन का मूल्यांकन–

→ **मवेशी और भैंस**– 50 प्रतिशत मूंगफली केक नाइट्रोजन की जगह अज़ोला का सेवन कराने पर भैंस के बछड़ों की वृद्धि दर में सुधार हुआ। दाना रूपांतरण दक्षता और आहार के अर्थशास्त्र में काफी सुधार हुआ। सूखा अज़ोला चारे के रूप में बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के केंद्रित मिश्रण में कुल प्रोटीन का लगभग 25 प्रतिशत प्रतिस्थापित किया जा सकता है। एक प्रक्षेत्र परीक्षण में लगभग 15 प्रतिशत दूध उत्पादन की वृद्धि देखी गई है जब 1.5–2 किलो ताजा अज़ोला प्रतिदिन नियमित रूप से खिलाया गया।

→ **सूअर**– परिष्करण के चरण में दिया गया अजोला सूअरों को नियंत्रण समूह की तुलना में तेजी से बढ़ने मे मदद करता है। अज़ोला की इष्टतम प्रतिस्थापन दर, बढ़ते और मोटा सूअरों में 10 और 20 का अनुपात है। कम आयु वाले सूअरों के लिए राशन में अज़ोला का समावेश स्तर 150ग्राम /किग्रा आहार तक सीमित होना चाहिए।

→ **मुर्गी पालन/बतख**–सफेद लेगहार्न को 5 प्रतिशत के स्तर पर ताजा अज़ोला के साथ पूरक पोल्ट्री दाना खिलाया, नियंत्रण समूह की तुलना में तेजी से बढ़ोतरी हुई। ताजा अज़ोला, सोयाबीन को आंशिक रूप से प्रति वर्ष 20 प्रतिशत के कुल कच्चे प्रोटीन में बदल सकता है, जो कि विकास दर या स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव के बिना मोटा बतख के आहार में होता है। पक्षियों को 5 प्रतिशत अतिरिक्त पूरक के साथ सामान्य भोजन देने पर कुल शरीर के वजन में 10–12 प्रतिशत वृद्धि देखी जा सकती हैं। सूखा हुआ अज़ोला 5 प्रतिशत तक आहार मे शामिल करने पर, ब्रोयलर चिकन के उत्पादन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। दाने की लागत प्रति किग्रा कम हो जाती है और प्रति पक्षी लाभ भी अधिक होता है।

→ **मछली** –अज़ोला तृणभक्षी मछली जैसे कि ग्रासकार्प के लिए एक उपयुक्त पूरक भोजन है। कुछ परीक्षणों से पता चला है कि ग्रासकार्प प्रति दिन अपने वजन के 50 प्रतिशत से 80 प्रतिशत अज़ोला का उपभोग कर सकती है।

→ **बकरी/भेड़**–बकरी/भेड़ के बच्चों के राशन में 15 प्रतिशत तक अज़ोला का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। सूखे अज़ोला को ब्लैकबगांल के बच्चो के आहार मे बिना किसी प्रतिकूल प्रभाव के 20 प्रतिशत स्तर तक शामिल किया गया।

अज़ोला के उपयोग के फायदे–

अज़ोला उत्पादन स्थानीय मिट्टी के प्रकार और प्रजनन क्षमता पर ज्यादा निर्भर नहीं है क्योकि यह कम उपजाऊ कृषि जलवायु क्षेत्र में भी सफल हो सकता है। अज़ोला, आर्थिक रूप से जानवरों मे विकास, दूध, मांस आदि के संदर्भ में उत्पादकता में सुधार के लिए संभावित वैकल्पिक पोषक तत्व पूरक के रूप में काम कर सकता है। इसमें न केवल पोषक तत्व है बल्कि अज़ोला में कुछ अन्य घटक जैसे खनिज, प्रतिउपचायक, कैरोटीनॉइड, जैव–बहुलक, प्रोबायोटिक्स आदि शामिल हैं जो उत्पादन प्रदर्शन में समग्र वृद्धि के लिए योगदान देते हैं। डेरी किसानों के बीच पर्याप्त चारे की खेती करना आम बात नहीं है। किसान आम तौर पर अपनी भूमि का उपयोग फसल की खेती के लिए करते हैं। परिणाम स्वरूप जानवरों को उनके राशन में पशु की आश्यकता के अनुसार हरा चारा नहीं दिया जाता है। ऐसी परिस्थिति में अज़ोला एक अच्छा विकल्प है, क्योंकि यह पूरे वर्ष कम श्रम तथा भूमि के न्यूनतम उपयोग से उगाया जा सकता है और पशुओं के लिये हरे चारे की आपूर्ति कर सकता है।

सागौन – आर्थिक समृद्धि हेतु व्यवसायिक खेती

अनुभा श्रीवास्तव, अनिता तोमर, सत्येंद्र देव शुक्ला तथा हरिओम शुक्ला

पारि – पुनर्स्थापन वन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज, (उ.प्र.)

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद, देहरादून,, (उत्तराखण्ड)

परिचय :

पूर्वी उत्तर प्रदेश में किसान कृषिवानिकी के अन्तर्गत आम, नीम, शीशम, सागौन, पॉपलर, आँवला, कटहल, बाँस, यूकेलिप्टस, बबूल इत्यादि पेड़ लगाते चले आ रहे हैं। कृषि फसलों के साथ इन पेड़ों को लगाने से उन्हें अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो रही है। इन सभी पेड़ों में **"सागौन"** का अपना एक विशेष महत्व है। अच्छी सिंचाई, उपजाऊ मिट्टी उचित देखभाल के साथ वैज्ञानिक प्रबंधन के जरिये सागौन की अच्छी खेती की जा सकती है जिसमें अच्छा लाभ कमाया जा सकता है। व्यवसायिक उपयोग के लिये प्रायः सागौन की लकड़ी से बनाये गये सामान अच्छी गुणवत्ता के होते हैं और ज्यादा दिनों तक टिकते भी हैं। इसीलिए सागौन को इमारती लकड़ी का राजा कहा जाता है। सागौन (टीक) का वैज्ञानिक नाम टैक्टोना ग्रैन्डिस है और यह बर्बेनेसी कुल का सदस्य है। इसकी सामान्यतया लम्बाई 30 मीटर तक होती है। भारत में प्राकृतिक रूप से यह राजस्थान, उ0प्र0 के कुछ भागों, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक और केरल राज्यों में पाया जाता है।यह आर्द्र गर्म वातावरण में, समुद्र सतह से 1200 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह सजावटी एवं टिकाऊ इमारती लकड़ी के कारण बेहद उपयोगी वृक्ष है। भारत में सागौन विभिन्न प्रकार के पाये जाते हैं– दक्षिणी और मध्य अमेरिकन सागौन, नीलांबर (मालाबार) सागौन, पश्चिमी अफ्रीका सागौन, अदिलाबाद सागौन, गोदावरी सागौन, कोन्नी सागौन।

उपयोग : सागौन भारत की एक बेहद महत्वपूर्ण इमारती लकड़ी है, जो कई प्रयोजनों में उपयेागी है। यह रेल स्लीपर व डिब्बों में दरवाजे/खिड़की, शटर एवं ढाँचा बनाने में एफर्नीचर (सज्जा सामग्री)ए बिजली एवं फोन के खम्भों के लिए उपयेाग में आती है। इसकी छाल का प्रयोग बलवर्धक दवाओं, कब्जनाश दमा एवं श्वेतप्रदर में होता है। इसके फूल एवं बीज मूत्रवर्धक होते हैं। फूलों का प्रयोग अस्थमा एवं मूत्र विकार में होता है।

सागौन की खेती

भूमि –सागौन की खेती के लिए जलोढ़ मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। यह गहरी, अच्छी भुरभुरी,

हल्की, सरन्ध्र, दोमट तथा बलुई दोमट मिट्टी में अच्छा विकास करता है। सागौन की खेती के लिए मिट्टी का पी0एच0 6.5 – 7.5 के बीच होना चाहिए ।

जलवायु –सागौन के लिए नमी और उष्णकटिबन्धीय वातावरण जरूरी होता है। यह ज्यादा तापमान को आसानी से बर्दाश्त कर लेता है लेकिन सागौन के बेहतर विकास के लिए उच्चतम तापमान 39 से 44 डिग्री सेंटीग्रेट और निम्नतम 13 से 17 डिग्री सेंटीग्रेट उपयुक्त है।

वर्षा –सागौन की अच्छी पैदावार 1200 से 2500 मिलीमीटर बारिश वाले इलाके में प्राप्त होती है। इसकी खेती के लिए बारिश, नमी, मिट्टी के साथ–साथ रोशनी और तापमान भी अहम भूमिका निभाता है।

पोषक तत्व प्रबंधन – कैल्सियम, फास्फोरस, पोटैशियम, नाइट्रोजन और जैविक तत्वों से भरपूर मिट्टी सागौन के लिए फायदेमंद है। कई शोध परिणाम बताते हैं कि सागौन के विकास और लम्बाई के लिए कैलिसयम की ज्यादा मात्रा बेहद जरूरी है। यही वजह है कि सागौन को कैलकेरियस प्रजाति का नाम दिया गया है।

पौध सामग्री तथा पौधा रोपण – सागौन का पुनर्उत्पादन कृत्रिम एवं प्राकृतिक दोनों तरीकों से किया जा सकता है।

पौध रोपण की विधियाँ –

बीज संग्रहण – वृक्ष 10–12 वर्ष की उम्र से प्रतिवर्ष प्रचुर मात्रा में बीज उत्पादन करता है। एक औसत 40 वर्ष की आयु के वृक्ष द्वारा लगभग 2–3 कि.ग्रा. फलों का उत्पादन होता है। फल उत्पादन का समय नवम्बर से मार्च.अप्रैल के मध्य है। बीज संग्रहण मार्च से अप्रैल के मध्य किया जाता है। वृक्ष के नीचे चादर बिछाकर वृक्ष को झंझोड़कर बीज एकत्रित करना व्यवहारिक है।

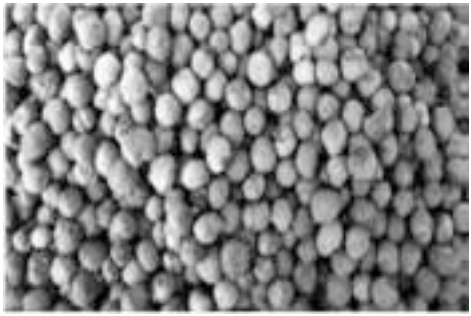

सागौन के बीज

बुआई पूर्व उपचार – गोबर के घोल में डुबाना

बीजों का सुखाना एवं संग्रहण – इनके बीजों के अंकुरण – क्षमता बची रहे यह सुनिश्चित करते हुये इन्हें सावधानीपूर्वक धूप में सुखाया जाता है। एक वर्ष पूर्व संग्रहित किये गये बीज तुरंत संग्रहित किये गये बीजों की तुलना में ज्यादा अंकुरण देते हैं। अंकुरण क्षमता को बनाये रखने के लिये, बीजों को हवा–रोधी डिब्बों (कनस्तर, कैन, काँच के बर्तन या प्लास्टिक की थैली) में रखना चाहिए। सागौन के फलों को जूट की थैलियों में छायादार स्थान पर 6 माह तक रखा जा सकता है। बुआई पूर्व उपचार, जैसे 45 दिनों तक एकान्तरित क्रम में भिगोना व सुखाना, गाय के गोबर के घोल में डुबाना आदि अंकुरण के लिये बेहतर होते हैं।

बुआई हेतु स्थान की तैयारी– बीजों को क्यारियों में बोकर पौध तैयार की जाती है– 1. छिड़काव बुआई, 2. पंक्ति बद्ध 3. 5–10 से मी. के अंतर पर या 10 से मी. की दूरी पर छिद्ररोपण द्वारा स्थानीय परिस्थितियों को देखते हुये फरवरी से जून के बीच बीज बुआई की जा सकती है।मई के अंत में बुआई हेतु उपयुक्त समय होता है।

क्यारियों में पौध तैयारी –

नम स्थानों पर उन्नत एवं शुष्क स्थानों पर थोड़ी गहरी क्यारियाँ तैयारी की जाती है। 10 मी. × 1 मी. की आयताकार एवं 15–30 से मी. ऊँचाई की क्यारियाँ तैयार की जाती है। बड़े ढ़ेलों को कूटकर बारीक मिट्टी तैयार की जाती है। लगभग 3 कि.ग्रा. उपचारित बीज प्रति क्यारी आवश्यकता होती है। बुआई के उपरान्त बीजों को मिट्टी की पतली तरह से ढक दिया जाता है, ताकि वे वायु, निर्जलीकरण व कुतरने वाले प्राणियों से सुरक्षित रहे। इन क्यारियों की 3–4 दिनों के अंतराल से सिंचाई की जाती है, इसके बाद 7–10 दिनों में सिंचाई की जाती है।

कृत्रिम पुनर्उत्पादन – सागौन की नर्सरी के लिए हल्की ढालयुक्त बलुई मिट्टी वाला क्षेत्र जरूरी होता है। नर्सरी की एक क्यारी 1.2 मीटर की होती है। इसमें 0.3 मी0 से 0.6 मी0 की जगह छोडी जाती है। साथ ही क्यारियों की लाइन के लिए 0.6 से 1.6 मी0 की जगह छोड़ी जाती है। एक मानक क्यारी से जो कि 12 मी0 की होती है उसमें करीब 3 से 12 किलो बीज इस्तेमाल होता है। एक क्यारी में 400–800 तक पौधे पैदा होते हैं।

ठूँठों की तैयारी –10–12 माह में पौधे उचित आकार ग्रहण कर लेते हैं। इस समय इन क्यारियों को सींचकर बेलचे की सहायता से 1 वर्ष के पौधे को निकाल लिया जाता है इन पौधों से ठूँठ निर्माण करने के लिए ऊपरी हिस्से का 1–2 सेमी. भाग तथा निचले हिस्से (जड़े) को 20–25 सेमी0 की लम्बाई में काटकर मध्य भाग को अलग कर लिया जाता है। प्रत्येक क्यारी से औसतन 400 से 600 उपयोगी ठूँठ तैयार हो जाते हैं।

सागौन नर्सरी

आधार या पात्र–पौध उत्पादन तंत्र– सागौन के बीजों को पॉलीथीन की थैलियों में, विशेषकर सामाजिक वानिकी की रोपणी में, किसानों को उपलब्ध कराने के लिए बोया जाता है जिसमें इसकी जड़े कुण्डलित नहीं हो पाती। रूट ट्रेनर में तैयार पौधे बेहतर वृद्धि एवं जीवित प्रतिशतता दर्शाते हैं।

कायिक प्रजनन – कायिक प्रजनन की सहायता से वृहद प्रजनन (कलमों द्वारा) एवं सूक्ष्म प्रजनन प्रयोग में लायी जाती है। नये पत्तियों सहित कलमों में 12 मिली मोल एस्कार्बिक एसिड की मदद से 42 प्रतिशत तक जड़ों का उत्पादन होता है। प्रौढ़ तने की कलमों के लिऐ, 250 पीपीएम + 125 पीपीएम नेफ्थोलीन एसिटिक एसिड और 800 पीपीएम थायमीन का प्रयोग करके कृन्तक रोपण संग्रहण (क्लोनल प्लाटिंग स्टाक) तैयार किया जा सकता है। सूक्ष्म प्रजनन में शूट प्रवर्धन हेतु एमएस माध्यम के साथ 10 माइक्रोमोल इंडोल ब्यूटीरिक एवं 1 माइक्रोमोल नेफ्थोलीन एसिटिक एसिड का प्रयोग करते हैं एवं इन विट्रो जड़ोत्पादन के लिये 15 माइक्रोमोल नेफ्थोलीन एसिटिक एसिड का प्रयोग करते हैं।

भूमि की तैयारी – सागौन के पौध रोपण के लिए जगह चौरस या हल्की ढलान वाला होना चाहिए। पौध रोपण के लिए पूरी जमींन की जुताई, एक लेवल मे करना जरूरी होता है। सागौन के बीज की बुवाई स्थानीय परिस्थितियों के हिसाब से फरवरी से जून के बीच करना चाहिए। बीजों की बुवाई छिड़काव विधि, लाइन में बुवाई या 2–3 मी0 × 2–3 मी0 अन्तराल पर 30 सेमी0 गहरे गढ्ढे बनाकर करना चाहिए। अगर पेड़ों के बीच फसल भी लेना है तो ये दूरी 5 मी0 × 5 मी0 रखनी चाहिए ।

सिंचाई –शुरूआती दिनों में पौधे की वृद्धि के लिए सिंचाई महत्वपूर्ण है। नियमित तौर पर सिंचाई करते रहने से पौधे के तने की चौड़ाई और लकड़ी की मात्रा बढ़ जाती है। सागौन की खेती में पौधे आमतौर पर 13 से 40 डिग्री तापमान के बीच अच्छी तरह से बढ़ते हैं। हर साल 1250 से 3750 मिमी0 की बारिश इसकी खेती के लिए पर्याप्त है। वहीं, अच्छी गुणवत्ता वाले पेड़ के लिये साल में चार महीना सूखा मौसम चाहिए और इस दौरान 60 मिमी से कम बारिश ही अच्छी होती है।

खरपतवार नियंत्रण – सागौन की वृद्धि एवं विकास के लिए सूर्य की पर्याप्त रोशनी जरूरी है। जिसके लिए सागौन पौध रोपण के शुरूआती दो–तीन सालों में खरपतवार नियंत्रण पर ध्यान देना बहुत जरूरी हो जाता है। नियमित अंतराल पर खरपतवार हटाने का अभियान चलाते रहना चाहिए। पहले साल में तीन बार, दूसरे साल में दो बार और तीसरे साल में एक बार ये अभियान अच्छी तरह चलाना आवश्यक है। पेड़ बड़े हो जाने पर ये काम स्थानीय परस्थितियों को ध्यान में रखकर करना चाहिए ।

रोग तथा नाशीजीव प्रबन्धन –निष्पत्रक और दीमक जैसे कीट बढ़ रहे हैं। सागौन के पौधे मे आमतौर पर पॉलिपोरस जोनालिस लग जाता है जो पौधे की जड़ को गला देते हैं। गुलाबी रंग का फफूँद पौधे को खोखला कर देता है। ओलिविया टैक्टोन और अनसिनुला टैक्टोन की वजह से पाउडर जैसे फफूंद पैदा हो जाते हैं जिससे असमय पत्ता झड़ने लगता है। महत्वपूर्ण रोपणी रोगों में, राइजोक्टीनिया सोलेनी फफूंद द्वारा पत्ती अंगमारी (लीफ ब्लाइट) और स्यूडोमोनास सोलेनोसिएटम द्वारा वैक्टीरियल विल्ट (मुरझाना) मुख्य है। मदार (आक), धतूरा, नीम के ताजा पत्तियों के रस इन रोगों से लड़ने में बेहद कारगर साबित होते हैं तथा हानिकारक कीटों को अच्छी तरह से खत्म किया जाता है।

कटाई–छटाँई – सागौन के पौधे की कटाई–छटाँई, रोपण के पांच से दस साल के बीच की जाती है। इस दौरान पौधों के बीच का अंतराल और जगह की गुणवत्ता को ध्यान में रखा जाता है। नजदीकी अंतराल वाले पौधे की पहली और दूसरी कटाई–छटॉई का काम पांचवे और दसवें साल पर की जाती है। दूसरी छटांई के बाद 25 फीसदी पौधे को विकास के लिए छोड़ दिया जाता है।

नश्वरता : बड़े पैमाने पर सागौन वनों में नश्वरता एवं विनाश के उल्लेख मिले हैं। सागौन में 20–60 प्रतिशत तक नश्वरता होती है। सागौन वनों का उचित रख रखाव, बाँस क्षेत्रों की आग से सुरक्षा, नीचे उगे पौधों एवं झाड़ियोंनुमा पौधों का रखरखाव, वनों में नये सागौन भण्डारों को प्रारम्भ करना, लगातार कॉपीसिंग पर कम निर्भरता, रोग ग्रस्त एवं मरे वृक्षों को हटाना तथा रोपण हेतु सागौन के उचित क्लोन के चयन द्वारा नश्वरता पर नियंत्रित किया जा सकता है।

कृषि वानिकी में अंतरफसलें तथा रोपण – कृषि वानिकी को ध्यान में रखते हुए सागौन के साथ कृषि फसलों को भी अंतर फसल के रूप में उगाया जा सकता है। विशेषकर वहां, जहां कृषि योग्य उपजाऊ भूमि होती है आरंभिक दो वर्ष के दौरान सागौन की खेती के बीच में अंतर फसल उगाई जाती है। आमतौर पर सागौन की खेती के बीच मे गेहूँ, धान, मक्का, तिल और मिर्च के साथ–साथ सब्जी की खेती की जाती है। कृषि वानिकी में अंतर फसल लेने के लिए दो तरीकों - मेड़ पर तथा

ब्लाक में पौध रोपण किया जाता है। अंतर फसल लेने के लिए पौधे की रोपण दूरी को बढ़ाकर 5 मी0 × 5 मी0 कर दिया जाता है।

फसल का चक्रण तथा निष्कर्षण . रोपण सामग्री की गुणवत्ता एवं क्षेत्र की निर्भरतानुसार सागौन की चक्रण आयु 50–80 वर्ष के बीच होती है। म0प्र0 एवं तमिलनाडु के कुछ चयनित जगहों में यह चक्रण 100 वर्ष से भी ऊपर मिला है। लगभग 15 से 20 सालों में अच्छी सिंचाई, उपजाऊ मिट्टी तथा वैज्ञानिक प्रबंधन के जरिये आमतौर पर एक एकड़ में 400 अच्छी क्वालिटी के आनुवांशिक पेड़ तैयार किये जा सकते हैं जिससे 1 पेड़ से 10–15 क्यूबिक फीट लकड़ी हासिल की जा सकती है। इस दौरान पेड़ के तने की लम्बाई 25–30 फीट, मोटाई 35–45 इंच तक हो जाती है।

कटान सम्बन्धी वन विभाग के नियम – वन विभाग के उचित प्रपत्र में वृक्षों के कटान तथा ढुलान हेतु प्रभागीय वन अधिकारी को आवेदन किया जाता है। सम्बन्धित वन अधिकारियों द्वारा उचित कार्यवाही के बाद कटान तथा ढुलान परमिट दिया जाता है।

बिक्री विधियाँ तथा बाजार मूल्य –सागौन के पेड़ को उसकी उम्र के अनुसार उचित लम्बाई एवं मोटाई प्राप्त कर लेने पर उसकी बिक्री करने से अधिक मुनाफा प्राप्त किया जा सकता है। सागौन की बाजार में अधिक मांग होने से इसे बेचने में कोई समस्या नहीं आती है। बिक्री करने के लिए वन निगम, आरा मशीन उद्योग, ठेकेदार के अलावा स्थानीय टिम्बर मार्केट भी होते हैं।

आर्थिकी –यदि सागौन का पौध रोपण 3 मी0 × 3 मी0 की दूरी पर किया जाये तो 1 एकड़ खेत में 400 पौधे तैयार किये जा सकते हैं। 1 स्वस्थ पेड़ से 10 से 15 फिट लकड़ी प्राप्त की जा सकती है।सामान्यतः बाजार में 1500–2000 रू0 प्रति क्यूबिक फिट लकड़ी का मूल्य प्राप्त होता है। इस प्रकार 1 एकड़ में लगभग 400 पेड तैयार होते हैं तथा 1 पेड़ से 12–15 क्यूबिक फिट लकड़ी प्राप्त होती है। तो 1 एकड़ में लगे कुल 400 पेड़ से लगभग 4800 – 6000 क्यूबिक फिट लकड़ी प्राप्त हो

जाती है। इस प्रकार एक एकड़ से कुल 72 लाख से 90 लाख रूपये तक की आमदनी प्राप्त की जा सकती है। सागौन की इमारती लकड़ी उत्कृष्ट होती है। सागौन के बागान की आर्थिकी उसकी श्रेणी, गुण और इमारती लकड़ी के लट्ठों के परिमाण पर निर्भर करती है। सागौन के बागान की कीमत या गरिमा उसके स्थल के दर्जे, उम्र और वृक्ष घनत्व पर आधारित होती है।

निष्कर्ष–सागौन की लकड़ी बेहद कीमती और महत्वपूर्ण होती है। इसके द्वारा बहुत सी कीमती सामान सजावट में प्रयोग होता है। वैज्ञानिक ढंग से उपयुक्त मिट्टी तथा पौध सामग्री के द्वारा किसान लकड़ी के साथ–साथ कृषि वानिकी अपनाकर ज्यादा आमदनी प्राप्त कर सकते हैं।

डॉ. हेमलता पन्त सम्मानित

डॉ. हेमलता पन्त ने क्रमशः ई.एस.डी.ए., नई दिल्ली के तत्वाधान में दिनांक 11 से 13 जनवरी 2019 को अर्न्तराष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागिता की एवं इन्हें इस संगोष्ठी में 'ग्रीन लीडरशिप सम्मान–2019' से जे.एन.यू., नई दिल्ली के सभागार में सम्मानित किया गया । इसी क्रम में डॉ. पन्त ने ब्लू प्लेनेट सोसाइटी, प्रयागराज द्वारा आयोजित अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लिया इसमें डॉ. पन्त को 'सोशल एन्वायरनमेन्टलिसट अवार्ड–2019' प्रदान किया गया । यह सम्मेलन दिनांक 21 व 22 मई 2019 को बी.एस.आई., प्रयागराज के सभागार में सम्पन्न हुआ था । इसी कड़ी में दिनांक 21 जून 2019 को राष्ट्रीय खेल उत्थान परिषद, रीवां, (म.प्र.) द्वारा जैव प्रौद्योगिकी सभागार, कु. आ.स्ना. महाविद्यालय, प्रयागराज में सम्पन्न हुये राष्ट्रीय संगोष्ठी में डॉ. पन्त को पर्यावरण के क्षेत्र में 'उत्कृष्ट कार्य करने हेतु उत्कृष्ट सेवा पुरस्कार–2019' प्रदान किया गया ।

बधाईयाँ
सह–सम्पादक

गौवंशीय पशुओ की देखभाल एवं प्रबन्धन

गौरव जैन, डा0 रामपाल सिंह एवं डा0 नीरज
पशु पालन एवं दुग्धशाला विज्ञान विभाग, शुआट्स प्रयागराज, (उ.प्र.)

दुधारू पशु से मतलब है कि जो पशु दूध देने वाले होते है और जिनके दूध का उत्पादन 3 – 4 लीटर प्रतिदिन से ज्यादा अर्थात् 10 से 12 लीटर प्रतिदिन होता है दुधारू पशु की श्रेणी के अंतर्गत आते है और चूँकि दूध एक सम्पूर्ण आहार की श्रेणी में आता है और उसमे सभी पोषक तत्व होते है ये सभी पोषक तत्व दूध में पशु शरीर से ही प्राप्त होते है इसीलिए हमारा फ़र्ज बनता है की हम दुधारू पशुओं को पोषक तत्वों की पूर्ति उनके दूध उत्पादन के दौरान उन्हें उनके आहार के द्वारा करते रहें इसीलिए हमें उनक खानपान का विशेष ध्यान रखना होगा ताकि दूध के माध्यम से होने वाले पोषक तत्वों की हानि की पूर्ति की जा सके ताकि पशु का स्वास्थ्य बना रहे एव उनके दूध उत्पादन पर भी कोई प्रभाव ना पड़े वरना पशु कमजोर पड़ जायेगा इसीलिए दुधारू पशु को ब्याने के 2 से 3 माह पूर्व ही दूध निकालना बंद कर देना चाहिए ताकि वो इस समय में दुग्धकाल के दौरान पोषक तत्वों की हो चुकी हानि की पूर्ति कर सके एवं अगले ब्यात में पूर्ण दूध का उत्पादन कर सके। दूध के माध्यम से सबसे ज्यादा केल्शियम और फास्फोरस का नुकसान होता है इसीलिए पशु को ब्याते समय मिल्क फीवर यानि केल्शियम की कमी हो जाती है और पशु बच्चा देने के बाद खड़ा नही हो पता है और बैठ जाता है इसलिए पशु का ब्याने से पूर्व ही सुखाना आवश्यक होता है ताकि ब्याते समय और बाद में कोई असर नही पड़े । अधिकांश पशु वैसे तो ब्याने से पूर्व ही सुख जाते है परन्तु कुछ पशु अधिक लम्बे समय तक या ब्याने के समय तक दूध देते रहते हैं तो हमे इन पशुओं का ब्याने से 2 माह पूर्व ही दूध निकलना बंद कर देना चाहिए ताकि वो उस समय में अगले ब्यांत के लिए सभी पोषक तत्वों की पूर्ति कर सकें पशुओं को सुखाने के लिए हम कई विधि प्रयोग कर सकते है जैसे अपूर्ण दोहन अर्थात उस पशु का पूरा दूध न निकाल कर कुछ ही निकालते है और फिर वो भी बंद कर देते है दूसरी विधि में हम पशु का एक समय ही दूध निकालते है और फिर वो भी बंद कर देते है और कभी कभी तो हम एकदम से भी दूध निकलना बंद कर देते है तो उससे पशु को दूध बनाना बंद हो जाता है और पशु सुख जाता है ।

प्रबंधन :–

दुधारू पशुओ का प्रबंधन हो या कृषि प्रबंधन हो या किसी व्यवसाय का प्रबंधन ही उनका मुख्य कारक होता है जोकि इस व्यवसाय या डेरी फार्म की रीड की हड्डी होती है क्योंकि प्रबंधन जितना सही होगा हमारा व्यवसाय भी उतना ही सही होगा और हम अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकतें हैं चूँकि हमारी राज्य और केंद्र सरकारें भी पशु पालको को डेरी व्यवसाय के लिए प्रोत्साहित करती रहती हैं एवं अनेक योजनायें चलाती रहती हैं क्योंकि डेरी और कृषि व्यवसाय दोनों एक दुसरे जुड़े हुए होते है अगर सभी व्यक्ति कृषि व्यवसाय के साथ साथ पशु पालन को भी सहायक व्यवसाय के रूप में अपनाते है और उनका रख रखाव एव प्रबंधन वैज्ञानिक तरीके से करते हैं तो वे निश्चित तौर पर अपनी आय दोगुनी कर सकते हैं दुधारू पशुओ से अधिकतम लाभ प्राप्त करने हेतु प्रमुखतया निम्न प्रबंधन अपना सकते है

1. आहार प्रबन्धन
2. आवास प्रबन्धन
3. प्रजनन प्रबन्धन
4. स्व्च्छ दूध का उत्पादन
5. स्व्च्छ पीने के पानी की व्यवस्था

आहार प्रबंधन :–

आहार प्रबन्धन ही पशु पालन व्यवसाय की रीड होती है और आप को जान कर आश्चर्य होगा की डेरी व्यवसाय में होने वाले खर्च का लगभग 60–70 प्रतिशत खर्च सिर्फ और सिर्फ आहार प्रबंधन पर ही होता है इसीलिए हमें दुधारू पशुओं को हेमशा एक प्रकार का निश्चित अनुपात में बना हुआ संतुलित आहार ही देना चाहिए ताकि हम पशु द्वारा अधिक से अधिक दूध का उत्पादन करा सकें एव लाभ प्राप्त कर सकें । संतुलित आहार वह आहार होता है जो पशू के प्रतिदिन की या उसके 24 घंटे की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । इस आहार में सभी प्रकार के पौष्टिक तत्व जैसे वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण और विटामिन्स आदि उपलब्ध होते हैं। दुधारू पशूओं को 24 घंटे में दिए जाने वाले चारे में सूखा चारा (जैसे गेहूं का भूसा, धान की पुआल, दलहनी फसलों की कड़बी), हरे चारो में (मक्का, ज्वार, जई, बरसीम, हरी सरसों तथा गन्ने का उपरी भाग या अगोला) तथा रातिब तीनो को एक निश्चित अनुपात में दिए जाने को भी पौष्टिक आहार या संतुलित आहार कहते है। हम इसे तीन भागो में बाँट सकते है ।

सूखा चारा :

जिन चारो में नमी की मात्रा 10–15 प्रतिशत हो तो ये सूखे चारों की श्रेणी में आते हैं। इनमे गेहूं का भूसा, धान का पुआल, जई का चारा, सूडान घास, ज्वार, बाजरा एवं मक्का की कड़वी

आते हैं। अगर हम इन चारो को पानी में कुछ देर भिगोकर पशु को खिलाते हैं तो इससे इन चारों की पोषकता एवं पचनियता भी बढ़ जाती है और पशु भी इनको रूचि पूर्वक खाते हैं ।

हरा चारा :

जिन चारो में नमी की मात्रा 50–60 प्रतिशत या उससे अधिक हो तो इन्हे हरा या रसीला चारा कहते हैं। पशुओं के लिये हरा चारा दो प्रकार का होता है। फलीदार हरे मोटे चारो में रिजका, बरसीम, मटर, लोबिया एवं ग्वार आदि फसले आती हैं । जबकि बेफलीदार हरे मोटे चारो में ज्वार की चरी, मक्का की चरी, बाजरा की चरी, जई का हर चारा, सेंजी, गिनी घास, अंजन घास, तथा गन्ने का अगोला आदि आते हैं। हरे चारों के लिए किसान भाइयों को इस प्रकार से खेती करना चाहिए की वे पशु को वर्ष भर हर चारा प्राप्त करा सके तथा किसान भाइयो को अपनी भूमि का पशु पालक को 10 से 15 प्रतिशत भाग पर हरा चारा उगाना चाहिए ताकि वर्ष भर चारा प्राप्त होता रहे ।

दाना :

दाना वह खाध पदार्थ होता है जिनमे एक या एक से अधिक खाध पदार्थ सम्मिलित होते है। चारो की तुलना में ये अधिक पौष्टिक होते है। इनके दुवारा जेसे कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिन्स की पूर्ति होती है। जो पशुओ के उत्पादन कार्यों जैसे बढ़वार, दुग्धोपादन, गर्भ विकास प्रजनन आदि में सहायक होते है। दानो को हम दो भागो में बाँट सकते है। अधिक प्रोटीन युक्त दाने और अधिक ऊर्जा देने वाले दाने । जिन दानो में प्रोटीन की मात्रा 18 प्रतिशत से अधिक होती है। प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थ कहलाते है। जैसे तैलीय बीज तथा खलिया, रक्त चूर्ण, मांस की छीलन, अलसी की खली, सरसों की खली, बिनौले की खली, मूँगफली की खली, सोयाबीन की खली, सूरजमुखी की खली आदि आते हैं। तथा जिन दानो में प्रोटीन की मात्रा 18 प्रतिशत से भी कम होती है। इस वर्ग में आते है इन दानों से पशु को अधिक मात्रा में ऊर्जा मिलती है। जैसे गेहूँ, ज्वार, बाजरा, मक्का, जई, जौ, चावल की पॉलिस, चोकर, चुनी, चना तथा किन्की, गुड़ तथा शीरा आदि आते हैं।

स्व्च्छ पीने के पानी की व्यवस्था :

पशुओं के लिए स्वच्छ और प्रदूषण रहित पानी की आवश्यकता होती है क्योंकि पानी पशू की सभी क्रियाओं के लिए अति आवश्यक है। जैसे दूध के अंदर 87% तक पानी होता है जबकि भ्रूण के अंदर यह 95% तक, बच्चे के जन्म के समय यह उसमे 75–80%, बच्चे के पैदा होने के बाद उसमे यह पांच माह की आयु तक 68–72%, तथा व्यस्क पशु के अंदर 50–60% तक पाया जाता है। पानी

की आवश्यकता पशु को जैसे दुधारू पशुओं को प्रतिदिन 40–50 लिटर तथा 1–4 लीटर पानी प्रति लीटर दुग्ध उत्पादन हेतु आवश्यकता होती है। पानी की मात्रा में अचानक परिवर्तन आ जाने पर पशु के स्वास्थ्य में, दुग्ध उत्पादन आदि में कमी हो जाती है। तथा पशु के शरीर में 20% से अधिक जल की कमी हो जाने पर पशु की मृत्यु हो जाती है। इसीलिए हमे पशु को हमेसा साफ पानी पिलाना चाहिए क्योंकि गंदे पानी से पशुओं को भी कई प्रकार की बीमारी हो सकती है ।

आवास प्रबन्धन :

आवास प्रबंधन से तात्पर्य यह है की पशु के रहने का स्थान इस प्रकार से बनाया जाये उसमे पशु को रहने का पर्याप्त स्थान प्राप्त हो सके पशु बाड़ा हमेशा पक्का बनाना चाहिए अन्यथा बाड़े का फर्श तो पक्का ही बनाना चाहिए और उसके लिए हमे ऊचे स्थान का चुनाव करना चाहिए ताकि बाड़े में कभी भी जल भराव की समस्या पैदा न हो सके और पानी की निकाशी में भी कोई समस्या न आये एवं उसकी साफ सफाई आसानी पूर्वक की जा सके पशु बाड़ा हमेशा साफ़ सुथरा रहना चाहिए क्योंकि फर्श के पक्के होने से वहा पर गंदगी कम फैलती है और मक्खी मच्छर को पैदा होने से रोका जा सकता है कीटाणु या बेक्टीरिया आदि को भी रोका जा सकता है और इनके द्वारा होने वाले बीमारी से पशुओं को बचाया जा सकता है और बीमारियों से होने वाले नुकसान से भी । पशु बाड़ा पशु को सभी प्रकार के मौसम से सुरक्षा प्रदान करने वाला होना चाहिए ताकि पशु पर कोई बुरा असर न पड़े पशु बाड़ा पशु को गर्मी में तेज धूप लू आदि से बचाने वाला होना चाहिए और उनको छाया प्रदान करने वाला होना चाहिए पशु बाड़ा में पशुओ को सर्दी से बचाने वाला होना चाहिए एव बरसात में तेज बारिश या बोछारो से भी बचाने वाला होना चाहिए बाड़ा हमेशा आरामदेह, साफ, और हवादार होना चाहिए और जिसमें धूप, प्रकाश और हवा पर्याप्त पहुचती रहनी चाहिए बाड़े का फ़र्श खुरदरा होना चाहिए ताकि पशु फिसल कर गिर न सके और चोट लगने से बच सके पशु बाड़े की रोज सफाई होना चाहिए ताकि बाड़े में प्रतिदिन फर्श पर फिनाइल के घोल का छिडकाव करना चाहिए तथा फर्श पर कभी कभी चुना छिडकना चाहिए ताकि जूं चिचड़ी व कलीली आदि को नस्ट किया जा सके ।

प्रजनन प्रबन्धनः

प्रजनन प्रबंधन के अंतर्गत हम पशु को ग्याभिन कराने पर ध्यान देते है क्योंकि दुधारू पशु को लगभग 12 से 15 माह के प्रत्येक अंतराल पर एक बच्चा देते रहना चाहिए क्योंकि प्रत्येक दुधारू

पशु बच्चा देने के बाद 45 से 60 दिन में हीट (गर्मी/heat) पर आ जाते है और उस समय वह ग्याभिन नही हो पाते है तो वह 21 दिन बाद फिर से हीट पर आते है और अगली बार हमे फिर से ग्याभिन करा देना चाहिए अगर इस बार भी वह ग्याभिन नही हो पाती है तो हमे पशु चिकित्सक की मदद लेना चाहिए और पशु का उपचार कराना चाहिए ताकि अगली बार में वह ग्याभिन हो जाये तो इस प्रकार पशु बच्चा देने के 3 से 4 माह बाद ग्याभिन हो जाती है और फिर वह 5–7 माह तक दूध देती रहती है उसके बाद उसको दो से तीन माह तक सुखा रखते है ताकि अगले ब्यांत के लिए तैयार हो सके परन्तु जो की गावों में देखा जाता है की सामान्यतया पशु 18 माह या 20 से 24 माह का समय दो बच्चो के बीच में ले लेता है जो की गलत है और पशु पालक भाई को आर्थिक तौर पर भी नुकसान होता है इसलिए हमे यह अन्तराल कम करना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके ।

स्वच्छ दूध का उत्पादन :–

स्वच्छ दूध वह दूध होता है जो की साफ वातावरण में किसी स्वस्थ एवं निरोगी पशु से प्राप्त किया गया हो जिसमे कोई गंदगी न दिखायी दे और वह स्वास्थ्य के लिए लाभदायक हो उसकी अच्छी सुगंध हो एवं पोष्टिकता युक्त हो तथा उसके हानिकारक जिवाणुओं की संख्या कम हो और यह लम्बे समय तक बिना बिगड़े रह सकता हो स्व्च्छ दूध कहलाता है स्वच्छ दूध का उत्पादन करने के लिए हमे मुख्तया निम्न बातो का ध्यान देना चाहिए जैसे :–

1. हमे दूध निकालने से पूर्व 2 से 3 घंटे पहले ही खुररा कर देना चाहिए ताकि पशु के शरीर की गंदगी या शरीर के बाल दूध में न गिर पाए एव पशुशाला में साफ सफाई पर भी ध्यान देना चाहिए तथा दूध निकालने के स्थान पर किसी प्रकार की गंदगी नही होनी चाहिए जैसे पशु के आस पास गोबर, भूसा, पुआल, या अन्य किसी प्रकार की गंदगी आदि ।
2. दूध निकालते समय हमे शुरू की कुछ धारे किसी अलग बर्तन में निकाल लेनी चाहिए क्योकि पशु के शुरू की धारो में ही सबसे ज्यादा बैक्टीरिया होता है और वह दूध की गुणवत्ता को खराब कर देता है ।
3. पशु पालक को हमेशा दूध निकालने से पहले अपने सर को ढक लेना चाहिए ताकि उसके बाल दूध में न गिर पाए एवं उसको दूध निकालते समय गुटखा पान मशाला बीडी आदि का सेवन नही करना चाहिए तथा उसको दूध निकालने से पूर्व अपने हाथों को साफ कर लेना चाहिए एवं उसके नाखून हमेशा कटे होने चाहिए ।

4. दूध निकालने वाले बर्तन को भली भांति रोगाणुनाशक से स्वच्छ एवं साफ कर लेना चाहिए क्योंकि बर्तन के कोने में सबसे ज्यादा बेक्टिरिया पाए जाते है और वो दूध की गुणवत्ता को बहुत ही जल्दी खराब कर देते है ।

बीमारी का प्रबन्धन :–

पशु पालन व्यवसाय में हमे बीमारियों का प्रबंधन भी आना आवश्यक होता है ताकि समय – समय पर कौन सी बीमारी होती है इनका टीकाकरण एवं डीवार्मिंग समय सारणी के अनुसार करा देना चाहिए ताकि उनको पेट से सम्बन्धित कोई परेशानी न हो। डीवार्मिंग इनको तीन माह में या 6 माह में अवश्य करा देना चाहिए तथा उनका समय–समय पर इलाज कराते रहना चाहिए किसान भाइयो को अपने पशुओ को संक्रामक एव छुआछूत रोग के रोगों से बचाने के लिए आवश्यक है हम समय समय पर अपने डेरी भवनों का रोगाणुनासन करते रहे जिसके लिए 5% वाले फिनाइल के घोल से धोना चाहिए दीवारों पर पुताई करनी चाहिए जिसमे थोड़ी सी कार्बोलिक एसिड मिली हो करनी चाहिए या हम पोटेशियम परामैंग्नेट या फर्मिलिन का भी हम उपयोग कर सकते है जब कभी कोई पशु रोगी हो जाता है तो उसे अन्य पशुओ से अलग कर देना चाहिए ताकि दुसरे पशु रोगग्रस्त न हो पाए या कोई पशु मर जाता है उसे तुरंत वहाँ से हटा देना चाहिए या वहा पर तुरंत उस भूमि को फिनाइल के घोल से उपचारित कर देना चाहिए ।

पृष्ठ 10 का शेष भाग

रोकथाम–

1. भूमि में चेस्टनट कम्पाउण्ड के 0.6 प्रतिशत घोल को आधा लीटर प्रति पौधे की दर से देते है।
2. बीज प्रकन्दों को 0.25 प्रतिशत सान्द्रता को घुलनशील सेरेसान में बोआई से पूर्व 30 मिनट तक उपचारित करते हैं।

पत्तियों के धब्बे (Leaf Spots)– यह रोग ''फिलोस्टिक्टा जिन्जीबेरी'' नामक फफूँदी के कारण होता है। पत्तियों पर अण्डाकार या अनियमित आकार के धब्बे पड़ जाते हैं, जो बाद में आपस में मिल जाते हैं। पौधों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्रकन्दों की उपज भी कम मिलती है।

रोकथाम–

1. बोड़ो मिश्रण (5:5:50) का उपयोग करें या
2. किसी भी ताम्रयुक्त रसायन का 0.3 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करने से इस रोग की रोकथाम होती है।

जलवायु परिवर्तन एवं अद्यतन कृषि तकनीकियाँ

डॉ. शिव प्रसाद विश्वकर्मा
कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रयागराज, (उ.प्र.)

कृषि उत्पादन मुख्य रुप से मौसम–जलवायु, भूमि और पानी की उपलब्धता पर निर्भर करता है। इनमें से किसी भी एक कारक के बदलने अथवा उनके स्वरुप में परिवर्तन से कृषि उत्पादन निश्चित रुप से प्रभावित होता है। प्राकृतिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन के कारण जलवायु में लगातार परिवर्तन हो रहा है। निस्संदेह यह एक चिन्ता का विषय है जो मुख्य रुप से वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों के निर्माण के कारण है।

डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में दिसम्बर, 2009 में आयोजित सम्मेलन के ग्लोबल क्लाइमेट रिस्क इन्डेक्स–2010 की सूची में भारत उन प्रथम 10 देशों में शामिल है, जो जलवायु परिवर्तन से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले हैं। क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला कृषि ही है। एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2050 तक वायुमण्डल का तापमान 3 डिग्री से 4 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है जिसका मौसम पर व्यापक असर पड़ने की सम्भावना है। जलवायु में परिर्वन कृषि को विभिन्न प्रकार से जैसे औसत तापमान में बदलाव, वर्षा, कीड़ों, एवं बीमारियों का प्रसार, कार्बन डाई आक्साइड, भू स्तरीय ओजोन, सान्द्रता, समुद्र जल स्तर में वृद्धि एवं अनेको खाद्यान्नों की गुणवत्ता आदि को प्रभावित कर सकता है। कृषि की नवीनतम तकनीकियों को अपनाते हुये हमें ऐसी खेती की आवश्यकता होगी जो समय के साथ चलते हुये सभी प्राकृतिक एवं आप्रकृतिक संसाधनों का सुसंगत प्रयोग करते हुये खाद्य सुरक्षा बनाये रखने में सक्षम हो।

जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर पड़ने वाले प्रमुख दुष्प्रभाव इस प्रकार हैं–

फसल की उत्पादकता पर प्रभाव

गंगा यमुना के दोआब में धान–गेहूँ फसल चक्र में पैदावार के आंकड़ों को क्षेत्रीय आंकड़ीयन दीर्घकालीन उर्वरता प्रयोगों एवं अन्य पारम्परिक प्रयोग विधियों एवं सिमुलेशन माडल से विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि पिछले तीन दशकों से जलवायु में धीरे–धीरे परिवर्तन के कारण उपज में निरन्तर गिरावट दर्ज की गई । कृषि वैज्ञानिकों के एक अनुमान के अनुसार प्रत्येक

1^{0} सेल्सियस तापमान में वृद्धि से देश में गेहूं का उत्पादन 40 से 50 लाख टन कम होता जायेगा। यदि किसान भाई गेहूं की बुवाई समय से कर लें तो 1 से 2 टन उत्पादन में गिरावट को कम किया जा सकता है।

कार्बन डाई आक्साइड का फसलों की वृद्धि पर प्रभाव

वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की व्यापक बढ़ोत्तरी से विभिन्न फसलों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया में वृद्धि पायी जाती है। विशेष कर सी–3 मैकेनिज्म वाले पौधे जैसे गेहूँ एवं धान। एक अध्ययन में पाया गया कि कार्बन डाई आक्साइड की 660 पी0पी0एम0 सांद्रता पर फसलों की उपज में 24 से 43 प्रतिशत तक प्रकाश संश्लेशण में वृद्धि हुई।

लाभांश में कमी

कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा में बढ़ोत्तरी के कारण अनेक फसलों की उपज में वृद्धि के बावजूद तापमान एवं वर्षा के कुप्रभाव के कारण कुल खाद्यान्न उत्पादन में कमी होगी। आई0पी0सी0सी0 एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि वायुमण्डलीय तापमान में वृद्धि के कारण भारत में वर्ष 2080 से 2100 के मध्य 11 से 40 प्रतिशत तक फसलों की उपज में कमी आने की सम्भावना है।

कृषि उत्पाद की गुणवत्ता पर प्रभाव

तापमान का अधिकांश फसलों की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। तापमान में वृद्धि का कपास, फलों, सब्जियों, चाय, काफी एवं सगन्ध तथा औशधीय पौधों की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यही नही अनाज एवं दाल वाली फसलों के पोशक तत्वों पर भी प्रभाव पड़ता है।

कीटों, रोगों एवं व्याधियों पर प्रभाव

रोगकारी जीवों एवं कीटों की संख्या वायुमण्डलीय तापमान एवं आर्द्रता पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, 16 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर पीली गेरुई का प्रकोप अधिक होता है किन्तु 18 डिग्री से0ग्रे0 पर इस गेरुई का प्रभाव कम हो जाता है।

पशु स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

जलवायु में परिवर्तन विशेषकर तापमान में वृद्धि के कारण पशुओं की प्रजनन शक्ति बुरी तरह प्रभावित होती है। एक अनुमान के अनुसार वैश्विक तपन के कारण भारत में वर्ष 2020 तक लगभग 1.60 मिलियन टन दूध का उत्पादन घटने की सम्भावना है।

मत्स्य पालन पर प्रभाव

समुद्रीय एवं नदियों के जल 1 डिग्री सें0ग्रे0 तापमान मे वृद्धि से मछलियों का वितरण एवं स्वास्थ्य अत्यधिक प्रभावित होता है। समुद्र जल की उपरी सतह में 0.5 से 1 डिग्री से0ग्रे0 वृद्धि के कारण तेलीय सारडाइन उत्तरी अक्षांश एवं पूर्वी देशान्तर की तरफ पाई जाती है।

मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

कार्बनिक खादों के घटते प्रयोग के कारण मृदा में जैव कार्बन की मात्रा लगातार घट रही है। ऐसे में आशंका है कि तापमान बढ़ने से मृदा की नमीं और उपजाऊ परन प्रभावित होगा। भूमिगत जलस्तर गिरने से न सिर्फ मृदा उर्वरता प्रभावित होगी बल्कि सूखे के कारण भूमि बंजर होने का खतरा भी रहेगा।

जैव विविधता पर प्रभाव

वैश्विक तपन का समुद्रतटीय क्षेत्रों की वनस्पतियों एवं वृक्षों पर कुप्रभाव पड़ेगा तथा इनके असन्तुलन का खतरा पैदा होगा। वनो के विनाश से जैव विविधता मे कमी आयेगी। यही नहीं अनेकों प्रकार की फसलें और प्रजातियां भी नश्ट हो सकती हैं।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

उष्णता के कारण श्वांस तथा हृदय सम्बंधी बीमारियों में वृद्धि की सम्भावना बढ़ेगीं। दस्त, हैजा, पेंचिस, मियादी बुखार, पीत, ज्वर, क्षयरोग जैसी बीमारियां बढ़ेगीं। मच्छरों से फैलने वाली बीमारियाँ जैसे मलेरिया, डेंगू, पीला बुखार, जापानी बुखार (मेननजाइटिस) के प्रकोप में बढ़ोत्तरी होगी।

जलवायु परिर्वन के प्रभाव से निपटने की अद्यतन/स्मार्ट तकनीकियाँ

जलवायु परिर्वन के कारण कृषि पर प्रायः नकारात्मक प्रभाव पड़ना अत्यंत चिन्ताजनक पहलू है। इसी को ध्यान में रखते हुए सुरक्षा, कृषि एवं जलवायु परिवर्तन पर वर्ष 2010 में हेग में हुए अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन में जलवायु स्मार्ट कृषि की अवधारणा का प्रार्दुभाव हुआ। स्मार्ट कृषि के अन्तर्गत उन सभी विधाओं एवं अद्यतन तकनीकियों का प्रयोग करना होगा जो प्राकृतिक एवं आप्रकृतिक संसाधनों का न्यायसंगत उपयोग पर आधारित हो और जिनसे खाद्य सुरक्षा तो बनी ही रहे साथ ही कृषि में स्थायित्व हो एवं यह लाभकारी भी हो। जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कम करने के लिए निम्न मुख्य जलवायु स्मार्ट विधाएं एवं तकनीकियों पर जोर देना होगा।

भूमि उपयोग एवं उसके प्रबन्ध मे परिवर्तन

जलवायु में आंशिक परिवर्तन को एग्रोक्लाइमेटिक जोन के अनुसार वैकल्पिक फसलों का चयन किया जाय तथा विभिन्न फसलों के उपलब्ध जर्मप्लाज्म द्वारा अधिक उष्णता एवं सूखा सहनशील प्रजातियाँ विकसित की जायें। जल संग्रहण प्रबन्ध परियोजना अन्तर्गत टिकाऊ उत्पादन, संसाधन संरक्षण, भूजल रिचार्ज, सूखा प्रबन्धन, रोजगार सृजन पर हुए विभिन्न शोधों का प्रयोग हो।

उचित फसल–चक्र

मृदा उर्वरता संवर्धन के लिए दलहनी फसलों का विस्तार करना होगा जिससे नाइट्रोजनधारी उर्वरकों के कम प्रयोग होने से वातावरण में नाइट्रस आक्साइड का दुष्प्रभाव कम होगा।

मृदा बिछावन / पलवार

मृदा पलवार से कार्बन की मात्रा का संरक्षण होगा जिससे वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा को बढ़ने से रोका जा सकता है।

जल उपयोगी तकनीकियाँ

शून्य बुआई तकनीकी, सतही बिजाई, फसल विविधीकरण के अन्तर्गत मक्का की खेती, धान की सीधी बुवाई, भूमि का समतलीकरण एवं फसलों में सूक्ष्म सिंचाई विधियों का उपयोग करने से जलवायु परिर्वन के कुप्रभावों को कम किया जा सकता है।

पोषक तत्व प्रबन्धन तकनीकियाँ

फसलों में पोषक तत्व प्रबन्ध के लिए प्रिसीजन खेती के अन्तर्गत साइट स्पेसिफिक न्यूट्रिएन्ट मैनेजमेंट तकनीकी एवं न्यूट्रिएन्ट एक्सपर्ट साफ्टवेयर द्वारा पोशक तत्व की आवश्यकता का निर्धारण करना, यूरिया एवं अन्य उर्वरकों का दक्षतापूर्वक उपयोग प्रयोग करना आदि तकनीकियों को अपनाना होगा।

उत्सर्जित जल एवं ठोस कचरों तथा अवशेषों का समुचित प्रबंध

अर्न्तराश्ट्रीय स्तर पर सीमित जल के संसाधनों को ध्यान में रखते हुए उद्योगों से निकलने वाले दूशित जल की भारी मात्रा के कृषि में सदुपयोग हेतु शोध एवं परीक्षण करना एवं सस्तुति करना तथा फसल अवशेषों का उचित प्रबन्ध करना।

ऊर्जा संरक्षण तकनीकियाँ

न्यून ऊर्जा या ईंधन की खपत से बुवाई जैसे– शून्य भू–परिश्करण विधि का उपयोग, धान की सीधे खेत में बुवाई, फसल अवशेष प्रबन्धन एवं सूक्ष्म सिंचाई विधियों का प्रयोग आदि।

मृदा सौर्यीकरण

उचित नमी युक्त खेत तैयार करके इसे पारदर्शी पालीथीन शीट से ढककर चारों ओर से सील कर देने से मृदा के तापमान में बढ़ोत्तरी होगी जिससे खरपतवार, कीट एवं रोगकारी जीव मर जायेंगे।

कृषि आधारित उद्योगों द्वारा आय में वृद्धि हेतु तकनीकियाँ

कृषि में आगतों की निरन्तर बढ़ती लागतों एवं प्रमुख फसलों की उपज में ठहराव ने कृषि क्षेत्र को अत्यधिक कमजोर किया है। ऊपर से जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर और विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इससे निपटने के लिए स्थान विशेष आधारित उर्वरक प्रबन्धन, उर्वरक पूर्ति एवं वितरण, उपयोगी कृषि विस्तार सेवाएं तथा उर्वरकों के दक्षतापूर्ण प्रयोग के लिए भौतिक एवं संस्थागत संरचात्मक ढांचे का विकास करना होगा।

एकीकृत कृषि प्रणाली

खेत में निरंतर एक या दो फसले उगाने से अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न होती है तथा खेती भी लाभकारी न होकर मात्र अजीविका का साधन बनी रहती है। इसलिए फार्म पर एकीकृत प्रणाली जैसे विविध फसलें उगाने के साथ बागवानी वाली फसलें, पशु पालन, मत्स्य पालन, मधुमक्खी पालन, आदि को अपनाना चाहिए जिससे किसान को समय समय पर आमदनी होती रहेगी। तथा फसल नष्ट होने या एक उद्यम में नुकसान होने पर अन्य उद्यमों से उसकी क्षतिपूर्ति होती रहेगी।

मौसम सम्बंधी पूर्वानुमान आधारित तकनीकियाँ

इसमें मौसम में बड़े परिवर्तन जैसे– सूखा, बारिश, तूफान, पाला आदि से किसानों को अवगत कराते हुए उनके मोबाइल पर संदेश भेजना तथा फसलों की कीटों से एवं रोगों से सुरक्षा, सिंचाई आदि की त्वरित जानकारी देना, फसल बीमा, फसल विविधीकरण आदि की जानकारी देने की तकनीकियां शामिल है।

भारतीय गौवंश / देशी गाय की उपयोगिता एवं महत्वता

डॉ0 देवेन्द्र स्वरूप एवं डॉ0 हेमलता पन्त
पशु वैज्ञानिक एवम् असिस्टेन्ट प्रोफेसर
चन्द्र शेखर आजाद कृषि एव प्रोद्यौगिक विश्वविद्यालय
कृषि विज्ञान केन्द्र, थरियावँ, फतेहपुर, (उ.प्र.)
एवं जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के कारण गौपालन तथा पशुपालन ग्रामीणों के सामाजिक तथा आर्थिक विकास में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, लगभग 70 प्रतिशत ग्रामीण कृषक भाई पशु पालते हैं जिनमें मुख्य रूप से छोटे, सीमान्त कृषक तथा भूमिहीन परिवार शामिल हैं। भारत की प्रमुख आबादी ग्रामीण अंचलों में रहकर कृषि एवं कृषि आधारित व्यवसायों से अपना जीवन यापन करती हैं तथा आज भी लगभग 70 करोड़ परिवार पशुधन से किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ है। इनके द्वारा 65 से 70 प्रतिशत गाय पाली जाती हैं।

आजादी के समय हमारे देश में 30 करोड़ आबादी के सापेक्ष लगभग 90 करोड़ गाय थीं, जो आज घटकर मात्र 9 करोड़ रह गयी हैं जबकि हमारी आबादी बढ़कर 130 करोड़ के पास पहुंच रही है। वर्ष 2012 के पशुगणना के अनुसार पूर्व के पाँच वर्षों में देशी गाय की आबादी में 32 प्रतिशत की गिरावट दर्ज हुई है जबकि विदेशी नस्ल की गाय की संख्या में लगभग 37 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है, यह चिन्ता का विषय है यही हाल रहा तो अगले 10 वर्षों में भारतीय मूल की देशी गाय प्रायः विलुप्त हो जाऐंगी। इनकी संख्या आज हमारे देश से कहीं ज्यादा ब्राज़ील, अमेरिका व आस्ट्रेलिया आदि विदेशों में हो रही है।

भारतवर्ष में विश्व की कुल गौवंश की संख्या का लगभग 14 प्रतिशत पायी जाती हैं। गौवंश की 30 नस्लें हमारे देश के विभिन्न प्रदेशों में फैली हुई हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं

1. दूध देने वाली देशी गाय की नस्ले – शाहीवाल, गिर, देवनी, सिन्धी प्रमुख हैं।
2. दोहरे गुण वाली यानि दुग्ध उत्पादन व खेत में काम करने योग्य देशी गाय की नस्लें – हरियाणा, थारपारकर, अंगोल, कानकरेज आदि।

देशी गाय की प्रमुख पहचान / लक्षण–

☞ देशी गाय की गर्दन ऊंची होती है, पीठ पर कन्धा, कूबड़ / ककूद / ड़िल्ला या हम्प होता है।

☞ देशी गाय में गल–कम्बल / झालर विकसित पाया जाता है।

☞ देशी गाय का शरीर सामने चौड़ा व पीछे पतला होता है।

☞ देशी गाय अपने बच्चों – बछिया / बछड़ा से ज्यादा लगाव रखती है और पशुओं की भीड़ में भी अपने बच्चे को पहचान लेती है।

☞ देशी गाय की यह विशेषता होती है कि ऊचान / पहाड़ पर भी आसानी से चढ़ जाती हैं।

☞ देशी गाय की आँत विदेशी गाय की तुलना में 1.5 गुना अधिक लम्बी होती हैं तथा आंतों में अधिक जीवाणु पाया जाता है।

☞ देशी गाय में सभी नस्लों का सींग का आकार अलग–अलग होता है।

☞ देशी गाय का दूध ए–2, अधिक पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्धक एवं सुपाच्य होता है।

साहीवाल – पंजाब, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में पाई जाने वाली साहीवाल गाय का शरीर भारी, त्वचा ढ़ीली, छोटी टांगें व सींग छोटी तथा मोटी व माथा चौड़ा होता है। मूलतः इनका रंग लाल, पीला, लाल या सफेद धब्बों के साथ गहरा भूरा होता है, अगली टांगों के बीच त्वचा लटकती हुयी एवं पूँछ लम्बी जमीन तक पहुचती हुई रहती है।

गिर

यह भारतीय मूल की गाय मुख्य रूप से गुजरात के जूनागढ़ क्षेत्र (गिर जंगलों के आस–पास) में पाई जाती है, इस नस्ल की गाय का शरीर सुदृढ़, गठीला होता है, कान लम्बे तथा मुड़ी हुई पत्तियों की तरह होते हैं, सिर लम्बा व माथा उभरा हुआ होता है, गायों का रंग लगभग लाल से लेकर काला तक पाया जाता है, शरीर पर विभिन्न तरह के धब्बे का पाया जाना नस्ल की विशेषता है।

देवनी

यह गाय की नस्ल हैदराबाद में मूल रूप से पाई जाती है, इस नस्ल की गाय, गिर नस्ल की गाय से काफी मिलती हैं परन्तु इनका माथा कम उभरा होता है, सींग बाहर से पीछे की तरफ मुड़े रहते हैं। शरीर का रंग काला सफेद या लाल सफेद होता है तथा विभिन्न आकार व रंग के धब्बे भी शरीर पर पाये जाते हैं।

गाय की पूरी की पूरी शारीरिक संरचना पूर्णतः विज्ञान पर आधारित है, देशी गाय जिसके पीठ

पर कूबड़/हम्प होता है उसमें सूर्य नाड़ी होती है, दरअसल यही हम्प सूर्य की किरणों से विशेष प्रकार की तरंगों को अवशोषित/ग्रहण करता है तथा वही उसके दूध, मूत्र एवं गोबर को पवित्र बनाती है जिस कारण उसमें इतने सारे गुण विद्यमान होते हैं। ऐसा मानना है कि गौ माता सर्वप्रथम समुद्र मंथन से उत्पन्न हुयी जिसे हम कामधेनु कहते हैं, गौ माता को यह भी वरदान है कि इसके शरीर से निकलने वाली कोई भी वस्तु बेकार नहीं जायेगी। अतः देशी गाय से उत्सर्जित एक–एक पदार्थ ब्रह्मऊर्जा, विष्णु ऊर्जा तथा शिव ऊर्जा से परिपूर्ण है।

गाय जिसको हम सभी माता या गौमाता भी कहते हैं, को हम कितनी ही प्रदूषित वातावरण में पालें या प्रदूषित भोजन/आहार व जल प्रदान करते हैं, गाय बिना किसी शिकवा–शिकायत के ज़हर रूपी प्रदूषण को भी बहुमूल्य – दूध, दही, गोबर, गो–मूत्र या हानिकारक स्वास के रूप में कभी भी बाहर उत्सर्जित नही करती, बल्कि उसे अपने शरीर में ही धारण कर लेती है तथा बदले में हमें जो भी पदार्थ प्रदान करती है वह– विशुद्ध होता है। जैसे दूध को हम पीते हैं या उससे दही–मखन, घी बनाते हैं, गो मूत्र से औषधि बनती है, तथा बहुउपयोगी गोबर से खेती के लिये जैविक खाद, गोबर गैस से भोजन, इंन्जन चलाना व बिजली आदि बनता है।

गाय का दूध

देशी गाय के दूध में अग्नि तत्व होता है, इसमें 85–87 प्रतिशत जल तत्व होता है। ऐसा मानना है कि सूर्य की जो किरणें हम्प के द्वारा शरीर में आती है, उस कारण देशी गाय के दूध में स्वर्ण गुण आ जाता है अतः इसके दूध का रंग स्वर्ण जैसा होता है, देशी गाय का दूध सुपाच्य होता है, तथा देशी गाय के दूध से कोलेस्ट्राल की मात्रा नहीं बढ़ती। गाय के दूध में – जल 87 प्रतिशत, वसा 4.0 – 4.4 प्रतिशत, प्रोटीन 3.2 – 3.4 प्रतिशत, लैक्टोज 4.5 – 4.7 प्रतिशत, खनिज लवण 0.60 से 0.70 प्रतिशत पाया जाता है।

वर्तमान समय में 70–75 प्रतिशत लोग पॉलीथीन (थैली) का दूध पी रहे हैं, जबकि पूरे भारत में 20–22 प्रतिशत दूध ही उपलब्ध है तो शेष दूध कहाँ से आ रहा है सोचने की बात है? जो बालक बचपन से ही गाय का दूध पीते हैं, उनकी बुद्धि तो कुशाग्र होती ही है साथ में उनका बह्मतेज भी बढ़ता है, जिस कारण उसके अन्दर ''ब्रह्मचर्य'' साधने की शक्ति भी आ जाती है, उसका आभा मण्डल बढ़ जाती है व बुद्धि के तीनों रूप घी, ध्रति, स्मृति असामान्य होती है, अतः इस कारण उसके अन्दर सात्विक गुणों की अधिकता पाई जाती है, तथा उसका पुरूषार्थ तेजोमय होता है।

गाय के दूध की दही

देशी गाय के दूध की दही में भी 60 प्रतिशत जल तत्व होता है, गाय की छांछ या मट्ठा, यह दूध से लगभग 400 गुना ज्यादा लाभकारी होता है, इसमें बहुत ही उपयोगी एनजाइम्स (enzymes) पाये जाते हैं, इसलिए गाय के दूध की छांछ को 'अमृत' भी कहा जाता है, इसमें इतने अधिक मात्रा में पोषक तत्व होते हैं कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। सौ लीटर पानी में तीन लीटर खट्टी छांछ (लस्सी) मिला कर फसल पर छिड़कने से फफूँद व विषाणु जनित बीमारियों से राहत मिलती है।

गाय का मक्खन

देशी गाय के दूध से निर्मित मक्खन/माखन में भी 40 प्रतिशत जल तत्व होता है। गाय का मक्खन अद्भुत होता है, इसमें भी भरपूर ब्रह्म ऊर्जा होती है। ब्रह्म ऊर्जा के अभाव में मनुष्य के अन्दर सत्वगुण नहीं आते हैं, तथा बिना सत्वगुण के संवेदनशीलता शून्य हो जाती है।

उदाहरणार्थ – यदि किसी ने आपके गाल पर एक थप्पड़ मार दिया और यदि अपाके अन्दर संवेदनशीलता है तो बर्दास्त कर लेगें, अन्यथा आप उसको थप्पड़ का जवाब जरूर देगें। आज भौतिक युग में बटर आयल का प्रचलन है, जो आपके अन्दर संवेदनशीलता समाप्त कर रहा है। भगवान श्रीकृष्ण ने गाय के मक्खन के ''उपयोग के कारण ही इतनी सारी आसुरी शक्तियों का नाश किया।

गौ मूत्र

यह सर्वविदित है कि गौ–मूत्र में अनेक जीवन उपयोगी (रासायनिक) तत्व विद्यमान है। गौ–मूत्र में भगवान धन्वंतर का निवास है, जो देवताओं के वैध हैं। यह माना जाता है कि अकेले गौ–मूत्र में 70 से भी अधिक बीमारियों को समाप्त करने की क्षमता है। गौ–मूत्र ही मात्र एक ऐसी औषधि है, जिससे वात–पित्त और कफ नियमित होता है, गौ–मूत्र से टी.बी., दमा, अस्थमा, कब्ज, कैंसर, उच्च रक्त चाप, वात व अनेक पेट के रोग ठीक हो सकते हैं।

गाय का गोबर

देशी गाय के गोबर में 16 (खनिज) पोषक तत्व पाये जाते हैं, जो वनस्पतियों के लिये बहुत ही उपयोगी होते हैं। गाय के गोबर में 3 सौ करोड़ जीवाणु पाये जाते हैं तथा गोबर से केचुँआ की खाद बनाई जाती है जो पौधों को आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करते हैं। गोबर से मीथेन गैस बनती है, जो रसोई में इधन के रूप में प्रयोग किया जाता है, व वृहद स्तर पर गोबर गैस प्लान्ट लगाकर बिजली का उत्पादन किया जा सकता है। देशी गाय के गोबर के साथ नीम की पत्ती का रस व गो–मूत्र,

पानी मिला कर, सड़ाने के उपरान्त फसलों पर छिड़कने से रस चूसक कीट आदि से बचाया जा सकता है।

देशी गाय के गोबर में चने का बेसन, गो–मूत्र, व गुड़ मिलाकर जीवामृत बनता है जिससे मृदा या खेत की जैविक क्रियाशीलता बढ़ती है तथा खेत उपजाऊ हो अधिक व पौष्टिक उत्पादन देते हैं।

मिट्टी के घरों में देशी गाय के गोबर से लिपाई करने पर जाड़े के दिनों में गर्माहट व गर्मी के दिलों में ठण्डक महसूस होती है।

देशी गाय के गोबर में सूखे तौल पर निम्न तत्व होते हैं :

1. नत्रजन – 1.74 प्रतिशत, 2. फासफेट – 1.7 प्रतिशत, 3. पोटाश – 0.6 प्रतिशत, 4. कैल्सियम – 0.37 प्रतिशत, 5. मैंगनिशियम–0.53 प्रतिशत, 6. लोहा–1400 पी.पी.एम., 7. जस्ता– 90 पी.पी.एम., 8. मैंगनीज–210 पी.पी.एम., 9. तॉबा–7.1 पी.पी.सम., 10. बोरान–5.0 पी. पी.एम.।

औसतन 260 कि.ग्राम की गाय से 1 वर्ष में लगभग 2165 कि. मूत्र व 5100 कि. विष्ठा (गोबर) तथा 360 कि. बैल से एक वर्ष में लगभग 2880 कि. मूत्र तथा 6800 कि. गोबर (विष्ठा) प्राप्त होता है।

देशी गाय के एक ग्राम गोबर में 3 सौ करोड़ तक सूक्ष्म जीवाणु होते हैं, 10 प्रतिशत ताजे गोबर के घोल को सूखे–हरे कचड़े पर डालने से विघटन की क्रिया तेज हो जाती है इससे बहुमूल्य खाद बनती है।

अतः समय आ गया है कि हम अपनी पिछली पीढ़ी की गलतियों को सुधारें, देशी गाय जो हमारे प्रत्येक घर–आंगन में दिखती थीं वह आज धीरे–धीरे समाप्ति की ओर बढ़ रहीं हैं। इनको हमें संरक्षित करना तथा विलोपन से बचाना है। पुनः हर किसान भाई के घर–आंगन में देशी गाय को पहुँचाना है जिससे 100 प्रतिशत सेहत व समृद्धि प्राप्त होगी तथा गोबर की खाद, जीवामृत के साथ गाय आधारित जैविक खेती कर अनेकों बीमारियों व रसायन के दुष्परिणाम से सभी को बचाना है ताकि देशी गाय के दूध को अमृत समझने वाले देश को छला न जासके।

So, once again let us get back to Sacred Indian Cows.

रजनीगंधा की वैज्ञानिक खेती

डॉ.मनोज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

रजनीगंधा को अग्रेजी में ट्यूबरोज तथा भारत में कहीं–कहीं पर सुगंधराज के नाम से जाना जाता है। यह बहुउपयोगी तथा व्यावसायिक रूप से अति महत्वपूर्ण है इसका फूल सफेद और सुगंन्धित होता है। रजनीगंधा के कटे पुण्य गुलदस्ता बनाने तथा मेज पुण्य सज्जा के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा बिना डंठल के पुष्प का माला, गजरा तथा लरी बनाने एवं सुगंधित तेल बनाने के लिए उपभोग किया जाता है। रजनीगंधा कही स्पाइक 90–100 से0मी0 लम्बी होती है। प्रत्येक स्पाइक में 12–20 जोड़े तक फूल रहते है फूल का आकार कुप्पी की तरह होता है। इसका प्रवर्धन कन्द द्वारा किया जाता है।

किस्म–फूल की संरचना, आकार–प्रकार तथा पत्ती के रंग के अनुसार 4 वर्गों में बाँटा गया है।

1. **एकहरा**–फुल का रंग सफेद होता है और पंखुड़ियाँ केवल एक ही पंक्ति होती है। इस प्रकार की प्रमुख प्रजाति है : प्रज्जवल और श्रृंगार।
2. **डबल**–इसमें फूल सफेद रंग के होते है लेकिन पंखुड़ियों का उपरी शिरा हल्का गुलाबी रंगयुक्त होता है। पंखुड़ियाँ कई पंक्ति में सजी रहती है। प्रमुख किस्म है : वैभव और सुवासिनी।
3. **धारीदार**–इस किस्म के पुण्य सिंगल या डबल होते है लेकिन पत्तियों का किनारा सफेद या सुनहरा होता है। स्वर्णरेखा एक रजत दो किस्म विकसित की गई है।
4. **अर्थ डबल**–इस किस्म के पुण्य की पंखुड़ियाँ एक से अधिक पंक्ति में होती है। प्रमुख प्रजाति लोकल है।

भूमि :–

रजनीगंधा की खेती के लिए उपयुक्त मृदा बलुई दोमट या दोमट उपयुक्त होती है। इसकी खेती के लिए छायादार स्थान न हो अर्थात सूर्य की पूर्ण प्रकाश मिलता हो और जल जमाव न होता हो खेत में यानि जल–निकास का उत्तम प्रबन्ध है।

खेत की तैयारी–

पहली जुताई मिट्टी पलट हक से गहरी करे। इसके पश्चात 2–3 बार देशी हक या कल्टीवेयर से जुताई करें ओर प्रत्येक जुताई के पश्चात पाटा अवश्य चलाए ताकि मृदा समतल और भूरभूरी हो जाए। खरपतवार को खेत में अच्छी प्रकार से निकाल ले अर्थात् खरपतवार मुक्त खेती करें।

रोपड़–

कन्द रोपने का उपयुक्त समय मार्च–अप्रैल होता है। 2 से0मी0 प्यास या इससे बड़े आकार का कन्द या चुनाव रोपड़ के लिए उपयुक्त होता है। कन्द लगाने की दूरी सिंगल किस्म कन्दों को पंक्ति से पंक्ति (लाइन) की दूरी 20–30 से0मी0 तथा पौधे से पौधे की दूरी 15–20 से0मी0 और गहराई 5 से0मी0 पर रोपाई करते है।

खाद एवं उर्वरक–

एक वर्गमीटर क्यारी में 3–4 कि0ग्रा0 अच्छी प्रकार से सड़ी हुई कम्पोस्ट, 20–30 ग्राम नाइट्रोजन, 15–25 ग्राम फास्फोरस तथा 10–15 ग्राम पोटाश देना उपयुक्त होता है। कम्पोस्ट खाद, नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा, फास्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा रोपड़ के पूर्ण मृदा में मिला दे। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा को पोषण के 60 दिन बाद तथा एक तिहाई बची हुई नाइट्रोजन की मात्रा को फूल निकलनें पर देना चाहिए।

सिंचाई–

बरसात के मौसम में फसल की आवश्यकता तथा वर्षा को दृष्टिगत रखते हुए सिंचाई करें। गर्मी में 6–7 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते रहते है। समय पर सिंचाई करने से मूल का उत्पादन अच्छा होता है।

फूल को तोड़ना–

फूल को यदि गजरा, माला और वेनी आदि बनाने के लिए सुबह या शाम को तोड़ना उपयुक्त होता है। कटे फूलों के रूप में 50 या 100 स्पाइप का बण्डक बनाकर बाजार में भेजा जाता है। यदि दूर बाजार में भेजना हो तो स्पाइप के सबसे नीचे वाले फूल खिलने के पहले ही काट लिया जाता है, लेकिन लोकल मार्केट में भेजने के लिए 2–3 फूल खिलने पर काटें।

उपज–

उपज सामान्यता किस्म, भूमि तथा प्रबन्धन पर निर्भर करती है सामान्यता ताजा फूल की

शेष भाग पृष्ठ 81 पर

निपाह वायरस से संक्रमण के लक्षण एवं बचाव

[1]डांखम जेम्स सिंह, [2]अजित सिंह एवं [3]गौरव जैन

[1,3]पशु पालन एवं दुग्धशाला विज्ञान विभाग, शुआट्स प्रयागराज, (उ.प्र.)

[2]पशु चिकित्सा अधिकारी, पशु चिकित्सालय, चिल्ला, प्रयागराज, (उ.प्र.)

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार निपाह एक नए तरह का वायरस है जो मनुष्यों एवं जानवरों दोनों में फैल रहा है यह वायरस सबसे पहले 1998 मलेशिया में पाया गया था उस समय ये सुअरों के कारण फैला था यानि सूअर भी निपाह वायरस के वाहक हो सकते हैं इसके बाद 2004 में बांग्लादेश में यह वायरस खजूर के पेड़ से फैला था इस वायरस को फैलाने वाले चमगादड़ जिन्हें (FRUIT BAT) कहा जाता है टेरोपोड़ई प्रजाति से आते है ये ऐसे चमगादड़ हैं जो रात में फलो से चिपक जाते है और पेड़ पोधो का रस पीते है इसी दौरान इनकी लार पेड़ और फलो को संक्रमित कर देती है बांग्लादेश में वायरस फैलने के संभावित कारणों में यह भी था कि वहाँ किसी संक्रमित पेड़ पर चढने के दौरान व्यक्ति के शरीर में हो गया था यानि यह वायरस इतना खतरनाक है कि शरीर के छोटे से हिस्से में छू जाने से व्यक्ति को बीमार बना सकता है ।

निपाह एक तरह का संक्रामक वायरस है जो रोगी को छूने और उसके लार के सम्पर्क में आने से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। हाल में ही केरल के कोजीकोड में सप्ताह भर में एक दर्जन लोगो की जान लेने के कारण चर्चा में आया यह एक ऐसा वायरस है जो चमगादड़ की लार से फैलता है और इसका खतरा पशुओ और मनुष्यों दोनों में फैलता है ।

निपाह वायरस के संक्रमण के लक्षण

इन्सेफलाइटिस रोग की तरह निपाह वायरस की चपेट में आने से रोगी के दिमाग की नसों में सूजन आ जाती है वायरस के सम्पर्क में आने के 5–14 दिन के अंदर व्यक्ति को इस रोग के लक्षण दिखाई देना शुरू होते हैं। सबसे पहले तेज बुखार आता है और सिरदर्द की समस्या होती है इसके साथ ही मरीज को साँस लेने में परेशानी होने लगती है कई मरीजो में दिमाग की नशों में सूजन की समस्या आ जाती है और मांसपेशियों में लगातार दर्द बना रहता है ।

निपाह वायरस से बचाव व इलाज

जिन चमगादड़ की हम बात कर रहे है वो इसके वाहक है यानि वो यह वायरस फैलाते है पर वो इसके कारण नही है चूँकि इसके कारणों का पता नही चल पाया है इसलिए निपाह वायरस

शेष भाग पृष्ठ 72 पर

बच्चों में पोषण का महत्व

डा0 शशि सिंह एवं डा0 नेहा त्रिपाठी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, बी.एन.एस. महिला महाविद्यालय, अयोध्या, (उ.प्र.)
एवं
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गुरूनानक महिला महाविद्यालय, अयोध्या, (उ.प्र.)

पोषण से बच्चों की बढ़त अच्छी होती है। और दिमाग का अच्छा विकास होता है। सही पोषण से बीमारियों से लड़ने की शक्ति मिलती है। और बच्चे बार–बार बीमार होने से बच जाते है। कुपोषण के दायरे से भी मुक्ति पाई जाती है। उचित पोषण से बीमारी नहीं होती, उत्पादकता में वृद्धि होती है, बच्चों में एकाग्रता की बढ़ोत्तरी होती है तथा पढ़ाई में मन लगता है। देश का भविष्य सुनिश्चित होता है।

पोषणः–

पोषण भोजन, पोषक तत्वों तथा उसमें पाये जाने वाली अन्य तत्वों के कार्य, उनके आपस में सम्बन्ध तथा स्वास्थ्य एवं बीमारी से सम्बन्ध, सन्तुलन तथा वह सारी प्रक्रिया जिसके द्वारा जीव भोजन को लेते हैं। जैसे–पचाना, अवशोषित करना, परिवहन, प्रयोग तथा उत्सर्जन आदि।

प्रत्येक मनुष्य भोजन ग्रहण करता है तथा पोषण प्रक्रिया द्वारा उसका शरीर में उपयोग करता हैं। पोषण की कई स्थितियों होती है जैसें–

1. अत्याधिक पोषण
2. अपर्याप्त पोषण
3. सुपोषण
4. कुपोषण

इनमें से मुख्य स्थितियाँ है।

सुपोषणः–

सुपोषण या उत्तम पोषण वह स्थिति है जहाँ व्यक्ति या बच्चा शारीरिक एवं मानसिक रूप से सन्तुलित रहता है तथा उसकी कार्य क्षमता उसकी उम्र के अनुसार रहती है।

कुपोषणः–

जब भोज्य पदार्थ गुण व परिमाण में अपर्याप्त लिये जाते हैं। तथा जिसके द्वारा शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाती वह स्थिति कुपोषण कहलाती है।

शिशुओं की पोषण सुरक्षाः–

शिशु और छोटे बच्चें के संदर्भ में कौशल पूर्ण सहायता और सलाह का दिया जाना जरूरी है। बच्चें के जन्म के 06 माह बाद तक माता को अधिक पोषण दिया जाना आवश्यक होता है। क्योंकि माता को स्वयं के पोषण के अलावा बच्चें को पोशित करना होता है।

बच्चों के लिए पूरक पोषण आहार 06 माह बाद शुरू कर देना चाहिए।

- छः माह की उम्र तक मां के दूध से आवश्यक ऊर्जा प्राप्त हो जाती है छः माह के बाद बच्चे को मां के दूध के अलावा भी ऊर्जा की आवश्कता होती है क्योंकि छः माह के बाद बच्चों की क्रियायें बढ़ जाती हैं। छः माह के बाद बच्चे ऊपर का आहार पचाने में सक्षम हो जाते है तथा उनमें निगलने व चबाने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है तथा उनमें स्वाद के तंतु भी विकसित हो जाते है।

बच्चे को पूरक आहार देनाः–

- 7वें माह की अवधि में नरम दाल, दरिया, दाल चावल, दाल रोटी मसलकर अर्द्धठोस (चम्मच से खिलाने पर सरके व बहे नहीं) खूब मसले साग एवं फल कम से कम दिन में दो बार दें। तथा नियमित स्तनपान भी कराएं।
- 8वें–9वें माह में नरम दाल, दलिया, दाल चावल, दाल रोटी प्रतिदिन धीरे–धीरे मात्रा बढ़ाते हुए नियमित स्तनपान के साथ 2–3 बार चम्मच से मसले हुए साग सब्जी तथा फल अवश्य दें। प्रोटीन के स्त्रोत जैसे, मांस, मछली, अण्डा यदि खाते हैं तो अवश्य दें।
- 10वें–11वें माह में नरम दाल, दरिया, दाल चावल, दाल रोटी प्रतिदिन धीरे–धीरे मात्रा बढ़ाते हुए अच्छी तरह धुले तथा कटे हुए फल एवं बिना मसला आहार दिन में तीन बार दें तथा नियमित स्तनपान जारी रखें।
- 12 माह से 05 वर्ष की अवधि में सभी प्रकार का भोजन ग्रहण कर सकते हैं जो कि सुपाच्य तथा पोषक तत्वों से युक्त हो। इस अवधि में बच्चों की बृद्धि तथा विकास बहुत तेजी से होता है इसलिए प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन तथा खनिज लवण युक्त आहार अवश्य देना चाहिए इसकी मात्रा आयु के अनुसार होनी चाहिए।

बच्चों के पोषण से सम्बन्धित ध्यान देने योग्य बातेंः–

- छः माह तक जब बच्चा सिर्फ मां का दूध पीता है, तब से उसे किसी भी अन्य भोज्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु जब उसे ऊपरी आहार दिया जाता है तो उसे अन्य पदार्थ देना आवश्यक होता हैं।
- स्तनपान शिशु का सर्वोत्तम पाषण है। विशेषज्ञों का मानना है कि जन्म के एक घण्टे के भीतर स्तनपान की शुरूवात शिशु के पूरे जीवन के लिए बुनियाद का काम करती है। इसी तरह छः माह की उम्र तक एक्सक्लूसिव स्तनपान बच्चे को कई बीमारियों से बचाने का कार्य करती है।
- बच्चे के विकास के लिए दूध व दूध से बनी वस्तुएं बहुत आवश्यक होती हैं। ये कैल्शियम के अच्छे स्त्रोत होते हैं जिनसे दांत व हड्डियाँ मजबूत बनते है दो वर्ष से कम वर्ष के बच्चों के लिए मलाई युक्त आहार दिया जा सकता है क्योंकि इस आयु में उन्हें वसा की आवश्यकता अधिक होती। किन्तु किशोर अवस्था या 02 वर्ष से अधिक उम्र के बच्चों के लिए कम चिकनाई युक्त आहार होना चाहिए।
- भोजन पकाते समय तलने की अपेक्षा उबालकर भाप द्वारा और (बेकिंग) पकाने का प्रयोग करना चाहिए क्योंकि तलने में तेल अधिक लगता है इससे कैलोरी की मात्रा तो बढ़ जाती है परन्तु पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं या बहुत कम हो जाते हैं जो कि बच्चों के विकास को प्रभावित करते हैं।
- भोज्य पदार्थ में ऐसी सामग्री का प्रयोग करें जिनमें कम नमक तथा कम मसाले हों। अधिक मसालेदार भोजन करने से शरीर की आत कमजोर हो जाती हैं।
- यदि मांसाहार लेते है तो अपने बच्चों को बिना चर्बी वाला मांस, मछली लेने के लिए प्रोत्साहित करें। क्योंकि चर्बी वाले भोज्य पदार्थ का अधिक सेवन करने से शरीर में मोटापा की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।
- ऐसी सामग्री का चयन करें जिसमें चिकनाई तथा चीनी कम मात्रा में प्रयुक्त हो। अपने बच्चों को भरपूर अनाज खाने के लिए प्रोत्साहित करें। और उनमें अधिकांशतः साबुत अनाज खाने की आदत डालें जैसे अंकुरित अनाज आदि।
- अपने बच्चों को 01 वर्ष से ही विभिन्न प्रकार के पौष्टिक आहार, जैसे पत्तेदार, हरी सब्जियां ताजे तथा मौसमी फल, फलियाँ और इसी प्रकार के आहार लेने की आदत डालें जिससे वह स्वस्थ रहेगें।

निष्कर्ष–

- घर परिवार में यदि बच्चे स्वश्थ रहते हैं तो पारिवारिक वातावरण भी स्वस्थ तथा खुशनुमा रहता है अन्यथा बच्चों के साथ–साथ सभी परिवार के सदस्य भी परेशान रहतें हैं। इसी लिए बच्चों को शुरूवात से ही माता–पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों में पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्द्धक आहार लेने की आदत डालें तथा 02 घण्टे से 2:30 घण्टे पर बच्चों को खाने के लिए अलग–अलग चीजें दें। जिससे उनके शरीर में आवश्यकता के अनुसार पोषक तत्व प्राप्त हो सकें।
- बच्चों के साथ–साथ परिवार के बड़े–बुजुर्गों को भी अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना चाहिए तथा अपने आहार में सभी पोषक तत्वों से भरपूर भोज्य पदार्थ शामिल करना चाहिए जिससे विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचा जा सकता है तथा बीमारी में खर्च होने वाली आर्थिक परेशानियों से भी बचा जा सकता है। और एक स्वश्थ समाज तथा स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

पृष्ठ 68 का शेष भाग

के लिए अभी तक कोई टीका नही खोजी गई हालाँकि वायरस से होने वाले खतरों को देखते हुए सपोर्टिव केयर के जरिए इस वायरस की चपेट में आये मरीज को ठीक किया जा सकता है हालाँकि कुछ सावधानियाँ रख कर इस वायरस से बचा जा सकता है ।

- फलो के जरिए इस संक्रामक रोग के वायरस तेजी से फैलते है इसलिए फलो को खाने में सावधानी रखें ।
- अगर कोई व्यक्ति इस वायरस से पीड़ित हो तो ना उसके नजदीक जाए और ना ही उसे छुए ।
- तेज बुखार और सिरदर्द होने की स्थिति में तुरंत डाक्टर से सम्पर्क करें और कोई भी दवा ना लें ।
- अगर किसी व्यक्ति की मौत इस वायरस की वजह से हुई हो तो उसके शव से भी दूर रहें ।
- उम्र दराज लोगो और शूगर के मरीजों को ज्यादा खतरा है ।
- संक्रमित इलाकों में किसी भी जानवर का मांस एवं फल खाने से बचें ।
- किसी भी स्थिति में सूअर को छूने व ताजा मांस खाने से बचें ।
- निपाह वायरस की चपेट में आने वाले व्यक्ति के कपडे, बिस्तर, साबुन, कंघी आदि का इस्तेमाल ना करे ।

मुर्गी पालन को रोगों से बचाने हेतु उचित प्रबन्धन

गौरव जैन, डा0 रामपाल सिंह एवं डा0 नीरज
पशु पालन एवं दुग्धशाला विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज, (उ.प्र.)

उत्तर प्रदेश एक पशुधन प्रधान राज्य है और यहाँ पर कृषि कार्य के साथ–साथ पशु पालन व्यवसाय को भी बहुत अधिक महत्व दिया जाता है और पशु पालन व्यवसाय के अर्न्तगत मुर्गी पालन भी एक प्रमुख व्यवसाय है जो पशुपालन के अन्तर्गत अपना एक विशेष स्थान प्राप्त किये हुए है। जिससे मनुष्य को उत्पाद के रूप में अण्डा एवं मांस प्राप्त होता है जो कि मनुष्य के शरीर के लिए सुपाच्य प्रोटीन देने का एक प्रमुख स्रोत है तथा साथ ही साथ बीट प्राप्त होती है जो कि खेतो मे एक बहुत ही अच्छी उर्वरक का कार्य करती है। मुर्गी पालन इस प्रकार का व्यवसाय है जो कि छोटे एवं मध्यम वर्ग के किसान कम पूंजी, स्थान एवं श्रम लगाकर भी नियमित रूप से आय प्राप्त कर सकते है एवं इस व्यवसाय को अपनाने पर वो अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते है जिसके लिए उनको उन्नत एवं वैज्ञानिक जानकारी का होना अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि मुर्गियों पर दूसरे पशुओं की अपेक्षा बिमारी का असर जल्दी दिखायी पड़ता है। मुर्गियों में बीमारी अधिकांशतः झुण्ड में होती है जिस कारण से किसान को आर्थिक तौर पर अधिक हानि उठानी पड़ सकती है। इसलिए उच्च गुणवत्ता युक्त मुर्गी के लिए उचित रख रखाव, स्थान, सन्तुलित आहार एवं स्वच्छ पानी की व्यवस्था तथा सही समय पर टीकारण दिया जाये तो अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

मुर्गी फार्म बनाने में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

- मुर्गी फार्म के लिए हमेशा स्थान ऊँचाई पर होना चाहिए ताकि वर्षा के मौसम में जल भराव की समस्या पैदा न हो सके।
- मुर्गी फार्म पर जंगली जानवरो से सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- मुर्गीशाला के आस पास चारो ओर छायादार वृक्ष होने चाहिये ताकि मुर्गीयो को लू व गर्मी से बचाया जा सकें।
- मुर्गी फार्म पर आने जाने के लिए रास्ते की उचित सुविधा होनी चाहिए।
- मुर्गी फार्म पर बिजली व पानी की पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिए।

- मुर्गी फार्म में सूरज की रोशनी व ताजी हवा के पूर्ण आगमन की व्यवस्था होनी चाहिए।
- मुर्गी फार्म के लिए उन्नत व अच्छी नस्ल की मुर्गीयां लेनी चाहिए ताकि उनसे अधिक अण्डा व मांस प्राप्त किया जा सके।
- उन्नत सकंर नस्ल से 200 से 260 तक अण्डा प्रति वर्ष अण्डा प्राप्त किया जा सके तथा मांस उत्पादन के लिए ब्रायलन 6–8 सप्ताह तक कम से कम 1.5 किलो प्रति ब्रायलर हो जाना चाहिए।
- मुर्गी फार्म का फर्श पक्का होना चाहिए ताकि साफ सफाई आसानी से की जा सके तथा बिमारियों से बचाया जा सके।
- मुर्गी फार्म पर मुर्गी या चूजे लाते वक्त यह सुनिशिचित कर ले कि वो किसी बिमारी से पीड़ित न हो तथा किसी भी नई हेचरी से चूजो को लाते वक्त हमेशा सावधानी बरतनी चाहिए।
- चूजों को लाने के बाद उनको पानी में शूगर मिलाकर दें।
- चूजो को लाने से पूर्व दरबे में कीटाणुनाशक से दरबे को अच्छी तरह धोकर साफ कर दे तथा दीवारो पर भी छिड़काव करे ताकि सब कीटाणु मर जायें।
- चूजों के आने के 12 धण्टे पूर्व बिजली के बल्ब जला दें ताकि दरबा गर्म हो जायें।
- दरबे में चूजो को सही व उचित तापक्रम की आवश्यकता होती है यदि दरबे में चूजे दीवारो की तरफ एकत्रित रहते हैं तो वहां का तापमान कम कर देना चाहिए।
- मुर्गी फार्म पर रोगी पक्षी को हमेशा स्वस्थ पक्षियों से अलग रखना चाहिए क्योंकि मुर्गियों में रोग बहुत तेजी से फैलती है जिस कारण से किसान भाइयों को आर्थिक तौर पर बहुत अधिक हानि उठानी पड़ सकती है।
- हमे मुर्गी फार्म में समय समय पर कीटाणुनाशक का प्रयोग करते रहना चाहिए तथा वर्ष में 2 बार वहां की दीवारों पर चूना अवश्य कराते रहना चाहिए।
- मुर्गी फार्म में फर्श पर बिछावन के लिए गेंहू का भूसा/लकड़ी का बुरादा या सूखी घास का प्रयोग करना चाहिए।
- नमी के दिनों में बिछावन को बार बार उलते पलटते रहना चाहिए और उसमें आवश्यकतानुसार बुझा हुआ चूना मिलाते रहना चाहिए और बिछावन का एक बाार प्रयोग होने के बाद कभी भी दूसरी बार प्रयोग नहीं करना चाहिए।

- मुर्गी फार्म के बाहर किसी बर्तन या ट्रे में कीटाणु नाशक या चूना रख देना चाहिए ताकि आने वाले अनजान व्यक्ति के माध्यम से कोई बिमारी ना आ सके।
- मुर्गियों के खाने पीने के बर्तन की भी साफ सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए और पक्षियो को पीने के लिए हमेशा साफ एवं स्वच्छ पानी उपलब्ध होना चाहिए।
- मुर्गी पालन में मुर्गियों को बिमारी से काफी हानि होती है और बीमारी का सीधा असर उनके उत्पादन पर भी पड़ता है।
- बीमारी एक शेड से दूसरे शेड में काम करने वाले व्यक्ति के शरीर अथवा कपड़ो, हवा एवं दाने के माध्यम से भी कीटाणु चले जाते है।
- प्राइवेट हेचरी से प्रथम दिन के चूजो का खरीदते समय ध्यान रखें कि रानीखेत का एफ–1 स्ट्रेन एवं मेरेक्स बीमारी का टीका लगा होना चाहिए।

मुर्गियों को प्राणघातक बीमारियों से दूर रखने के लिए समय–सयम पर टीकाकरण करवाना चाहिए।

क्र. सं.	समय	बिमारी
1	प्रथम दिन के चूजे में	मेरेक्स टीकाकरण
2	2–7 दिन पर	रानीखेत एफ–1 स्ट्रेन टीका
3	13–17 दिन पर	गमबारो टीका
4	6 सप्ताह की उम्र पर	रानीखेत आर बी टीका
5	8 सप्ताह पर	फाउल पोक्स टीका
6	16 सप्ताह की उम्र पर	रानीखेत आर 2 बी स्ट्रेन टीका

गेंदा की खेती और फूल के औषधीय गुण

डा. अर्चना उदय सिंह
प्रधान वैज्ञानिक,
सूत्रकृमि विज्ञान संभाग,
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

बाजार में अब वर्ष भर गेंदा के फूलों की डिमांड रहती है। त्योहारों पर प्रतिष्ठानों या घरों की सजावट करनी हो, या फिर वैवाहिक कार्यक्रम हों, बिना फूलों के पूरे नहीं हो सकते, वहीं मंदिरों पर पूजन के लिए भी फूलों की जरूरत रहती है। इसके अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों में भी फूलों की मांग बनी रहती है। ऐसे में गेंदा की खेती करना काफी फायदे का सौदा है। गेंदा के कुछ प्रजातियों जैसे–हजारा और पांवर प्रजाति की फसल वर्ष भर की जा सकती है. एक फसल के खत्म होते ही दूसरी फसल के लिए पौध तैयार कर ली जाती है। इस खेती में जहां लागत काफी कम होती हैं, वहीं आमदनी काफी अधिक होती है। गेंदा की फसल ढाई से तीन माह में तैयार हो जाती है। इसकी फसल दो महीने में प्राप्त की जा सकती है. यदि अपना निजी खेत हैं तो एक बीघा में लागत एक हजार से डेढ़ हजार रुपये की लगती है, वहीं सिंचाई की भी अधिक जरूरत नहीं होती। मात्र दो से तीन सिंचाई करने से ही खेती लहलहाने लगती है, जबकि पैदावार ढाई से तीन कुंटल तक प्रति बीघा तक हो जाती है। गेंदा फूल बाजार में 70 से 80 रुपये प्रति किलो तक बिक जाता है। त्योहारों और वैवाहिक कार्यक्रमों में जब इसकी मांग बढ़ जाती है तो दाम 100 रुपये प्रति किलो तक के हिसाब से मिल जाते हैं। गेंदा की खेती करने वाले किसान बताते हैं कि गेंदा की खेती में लागत कम हैं। त्योहारों में अच्छे दाम मिल जाते हैं, और इसकी डिमांड पूरे वर्ष ही विभिन्न कार्यक्रमों के चलते बनी रहती है।

उन्नतशील प्रजातियां

गेंदा की चार प्रकार की किस्मे पायी जाती है प्रथम अफ्रीकन गेंदा जैसे कि क्लाइमेक्स, कोलेरेट, क्राउन आफ गोल्ड, क्यूपीट येलो, फर्स्ट लेडी, फुल्की फ्रू फर्स्ट, जॉइंट सनसेट, इंडियन चीफ ग्लाइटर्स, जुबली, मन इन द मून, मैमोथ मम, रिवर साइड ब्यूटी, येलो सुप्रीम, स्पन गोल्ड आदि है।

जलवायु और भूमि

उत्तर भारत में मैदानी क्षेत्रो में शरद ऋतू में उगाया जाता है तथा उत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्रो में गर्मियों में इसकी खेती की जाती है। गेंदा की खेती बलुई दोमट भूमि उचित जल निकास वाली उत्तम मानी जाती है। जिस भूमि का पी.एच. मान 7.0 से 7.5 के बीच होता है वह भूमि खेती के लिए अच्छी मानी जाती है। दूसरे प्रकार की मैक्सन गेंदा जैसे कि टेगेट्स ल्यूसीडा, टेगेट्स लेमोनी, टेगेट्स मैन्यूटा आदि है ये सभी प्रमुख प्रजातियां है। तीसरे प्रकार की फ्रेंच गेंदा जैसे कि बोलेरो गोल्डी, गोल्डी स्ट्रिप्ट, गोल्डन ऑरेंज, गोल्डन जेम, रेड कोट, डेनटी मैरिएटा, रेड हेड, गोल्डन बाल आदि है। इन प्रजातियों का पौधा फैलाने वाला झड़ी नुमा होता है। पौधे छोटे होते है देखने में अच्छे लगते है. चौथे संकर किस्म की प्रजातिया जैसे की नगेटरेटा, सौफरेड, पूसा नारंगी गेंदा, पूसा बसन्ती गेंदा आदि।

खेत की तैयारी

गेंदे के बीज को पहले पौधशाला में बोया जाता है. पौधशाला में पर्याप्त गोबर की खाद डालकर भलीभांति जुताई करके तैयार की जाती है। मिट्टी को भुरभुरा बनाकर रेत भी डालते है तथा तैयार खेत या पौधशाला में क्यारियां बना लेते है। क्यारियां 15 सेंटीमीटर ऊंची एक मीटर चौड़ी तथा 5 से 6 मीटर लम्बी बना लेना चाहिए। इन तैयार क्यारियो में बीज बोकर सड़ी गोबर की खाद को छानकर बीज को क्यारियो में ऊपर से ढक देना चाहिए। तथा जब तक बीज जमाना शुरू न हो तब तक हजारे से सिंचाई करनी चाहिए इस तरह से पौधशाला में पौध तैयार करते है।

बीज बुआई

गेंदे की बीज की मात्रा किस्मों के आधार पर लगती है। जैसे कि संकर किस्मों का बीज 700 से 800 ग्राम प्रति हेक्टेयर तथा सामान्य किस्मों का बीज 1.25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। भारत वर्ष में इसकी बुवाई जलवायु की भिन्नता के अनुसार अलग–अलग समय पर होती है। उत्तर भारत में दो समय पर बीज बोया जाता है जैसे कि पहली बार मार्च से जून तक तथा दूसरी बार अगस्त से सितम्बर तक बुवाई की जाती है।

पौध रोपाई

गेंदा के पौधों की रोपाई समतल क्यारियो में की जाती है रोपाई की दूरी उगाई जाने वाली किस्मों पर निर्भर करती है। अफ्रीकन गेंदे के पौधों की रोपाई में 60 सेंटीमीटर लाइन से लाइन तथा 45 सेंटीमीटर पौधे से पौधे की दूरी रखते है तथा अन्य किस्मों की रोपाई में 40 सेंटीमीटर पौधे से पौधे तथा लाइन से लाइन की दूरी रखते है।

खाद एवं उर्वरक

250 से 300 कुंतल सड़ी गोबर की खाद खेत की तैयारी करते समय प्रति हेक्टेयर की दर से मिला देना चाहिए इसके साथ ही अच्छी फसल के लिए 120 किलोग्राम नत्रजन, 80 किलोग्राम फास्फोरस तथा 80 किलोग्राम पोटाश तत्व के रूप में प्रति हेक्टेयर देना चाहिए। फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की आधी मात्रा खेत की तैयारी करते समय अच्छी तरह जुताई करके मिला देना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा दो बार में बराबर मात्रा में देना चाहिए। पहली बार रोपाई के एक माह बाद तथा शेष रोपाई के दो माह बाद दूसरी बार देना चाहिए।

निराई–गुड़ाई

गेंदा के खेत को खरपतवारों से साफ सुथरा रखना चाहिए तथा निराई–गुड़ाई करते समय गेंदा के पौधों पर 10 से 12 सेंटीमीटर ऊंची मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए जिससे कि पौधे फूल आने पर गिर न सके।

रोग और नियंत्रण

गेंदा में अर्ध पतन, खर्रा रोग, विषाणु रोग तथा मृदु गलन रोग लगते है। अर्ध पतन हेतु नियंत्रण के लिए रैडोमिल 2.5 ग्राम या कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम या केप्टान 3 ग्राम या थीरम 3 ग्राम से बीज को उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए। खर्रा रोग के नियंत्रण के लिए किसी भी फफूंदी नाशक को 800 से 1000 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए. विषाणु एवं गलन रोग के नियंत्रण हेतु मिथायल ओ डिमेटान 2 मिलीलीटर या डाई मिथोएट एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।

कीट नियंत्रण

गेंदा में कलिका भेदक, थ्रिप्स एवं पर्ण फुदका कीट लगते है इनके नियंत्रण हेतु फास्फोमिडान या डाइमेथोएट 0.05 प्रतिशत के घोल का छिड़काव 10 से 15 दिन के अंतराल पर दो–तीन छिड़काव करना चाहिए अथवा कयूनालफॉस 0.07 प्रतिशत का छिड़काव आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

तुड़ाई और कटाई

जब हमारे खेत में गेंदा की फसल तैयार हो जाती है तो फूलो को हमेशा प्रातः काल ही काटना चाहिए तथा तेज धूप न पड़े फूलो को तेज चाकू से तिरछा काटना चाहिए फूलो को साफ पात्र या बर्तन में रखना चाहिए। फूलो की कटाई करने के बाद छायादार स्थान पर फैलाकर रखना चाहिए। पूरे खिले हुए फूलो की ही कटाई करानी चाहिए। कटे फूलो को अधिक समय तक रखने

हेतु 8 डिग्री सेंटीग्रेट तापमान पर तथा 80 प्रतिशत आद्रता पर तजा रखने हेतु रखना चाहिए। कट फ्लावर के रूप में इस्तेमाल करने वाले फूलो के पात्र में एक चम्मच चीनी मिला देने से अधिक समय तक रख सकते है।

पैदावार

गेंदे की उपज भूमि की उर्वरा शक्ति तथा फसल की देखभाल पर निर्भर करती है। इसके साथ ही सभी तकनीकिया अपनाते हुए आमतौर पर उपज के रूप में 125 से 150 कुंतल प्रति हेक्टेयर फूल प्राप्त होते है। कुछ उन्नतशील किस्मों से पुष्प उत्पादन 350 कुंतल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होते है। यह उपज पूरी फसल समाप्त होने तक प्राप्त होती है।

गेंदे के फूल के औषधीय गुण

अगर आपको फूलों का शौक है तो अब तक तो आपने अपने घर के गमलों में गेंदे के पौधे लगा लिए होंगे. गर्मियों में खिलने वाले गेंदे के फूल की सबसे बड़ी खासियत ये है कि यह कई दिनों तक ताजा बना रहता है और इसकी सुगंध भी लंबे वक्त तक बनी रहती है। देश के कई हिस्सों में गेंदे के फूल की खेती की जाती है। सजावट से लेकर गेंदे के फूल का इस्तेमाल कई तरह की बीमारियों के इलाज में भी किया जाता है। गेंदे के फूल में कई ऐसे तत्व पाए जाते हैं जो दर्द में आराम दिलाने का काम करते हैं। घाव भरने में भी ये कारगर औषधि की तरह प्रभावी है। अगर किसी को अल्सर की समस्या है तो गेंदे के फूल की चाय पीना उसके लिए विशेषतौर पर फायदेमंद रहेगा।

गेंदे के फूल को गरीबों का केसर भी कहा जाता है। गेंदे के फूल का इस्तेमाल रंजक के रूप में भी किया जाता है।

1. गेंदे के फूल का इस्तेमाल एंटी–बायोटीक के रूप में किया जाता है।
2. गेंदे के फूल में कई ऐसे एंटी–ऑक्सीडेंट्स पाए जाते हैं। जो आंखों से जुड़ी कई तरह की बीमारियों में फायदेमंद साबित होते हैं।
3. गेंदे का फूल एक बेहतरीन सौंदर्य उत्पाद है. ये त्वचा को लंबे समय तक जवान बनाए रखता है।
4. गेंदे के फूल में कई ऐसे तत्व पाए जाते हैं जो अल्सर और घाव को ठीक करने में मददगार होते हैं।
5. गेंदे के फूल का इस्तेमाल इत्र बनाने में भी किया जाता है।
6. गेंदे के फूल से नेचुरल कलर भी तैयार किया जाता है।

टपक सिंचाई : प्रयोग एवं लाभ

डॉ. मनोज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

टपक सिंचाई, सिंचाई करने की एक विधि है। इसके अन्तर्गत कम अन्तराल पर आवश्यकतानुसार पौधे के जड़ क्षेत्र में बूंद–बूंद के एप में दिया जाता है। इस विधि से सिंचाई करने पर मृदा की नमी में कमी नहीं होती है और साथ ही साथ सिंचाई जल को पौधे द्वारा उपयोग कर लिया जाता है जिसके परिणाम स्वरूप पौधे का विकास अच्छा हो जाता है और फसल का उत्पादन काफी अच्छा होता है। इस प्रणाली में फिल्टर, पाइप लाइन और ड्रिपर मुख्य अवयव होते हैं। इस विधि द्वारा उर्वरक का भी प्रयोग किया जा सकता है। फिल्टर का काम बाहरी अशुद्धियों जैसे मिट्टी के छोटे–छोटे कम, खरपतवार आदि को दान देता है। पाइप लाइन मुख्य एवं उपमुख्या पाईप प्लास्टिक की होती है जो कि भूमि के नीचे लगभग 40–45 से0मी0 की गहराई पर स्थापित किये जाते है। लेटरल पाईप लाइन भूमि के ऊपर पौधे पौधे के तने के पास से होता हुआ मुख्य और उपमुख्य पाईप लाइन से जुड़ा होता है। ड्रिपर पौधे के पास लेटरल पर लगाया जाता है। टपकाव सिंचाई विधि द्वारा सर्वप्रथम पम्प द्वारा पानी फिल्टर में जाता है जहाँ पर पानी में मौजूद अशुद्धियों को छान दी जाती है। अब साफ पानी मुख्य व उपमुख्य पाईप लाइन से होता हुआ लेटरल पाईप लाइन में जाता है। ड्रिपर पौधे के पास लेटरल पर लगा रहता है।

इस विधि का प्रयोग उन सभी फसलों में किया जाता है जिन फसलों में एक निश्चित अन्तराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। फिर भी आज के परिवेश में सामान्यतया सब्जियों और बागवानी वाली फसलों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

लाभ–टपक विधि से सिचांई करने पर निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. इस विधि से ऊँची–नीची भूमियों में सिचांई सफलतापूर्वक की जा सकती है।
2. टपक सिंचाई के साथ उर्वरक प्रयोग (फर्टीगेशन) करने से 30–35 प्रतिशत उर्वरक की बचत होती है।

3. टपक सिंचाई विधि से पारम्परिक सिंचाई विधि अपेक्षा 50–60 प्रतिशत जल की बचत होती है।
4. इस विधि से सिंचाई कराने पर 35–50 प्रतिशत खरपतवार कम हो जाते है।
5. मजदूरी की 35–40 प्रतिशत की बचत होती है।
6. उत्पादन 20–30 प्रतिशत अधिक हो सकता है।
7. जहां पर वर्षा आश्रित खेती होती है वहां पर इस विधि का सफलतापूर्वक प्रयोग कियाजा सकता है।
8. टपक सिंचाई के साथ कीट व रोगनाशी का प्रयोग किया जा सकता है। जिससे उत्पादन लागत में कमी आती है।
9. जहां पर भूमि जल स्तर नीचे हो और नलकूप आदि लगाना संभव नहीं हो और तालाब का पानी उपलब्ध हो/टपक सिचांई विधि का उपयोग करके सब्जियों की खेती की जा सकती है।
10. टपक सिंचाई के साथ उर्वरक, कीटनाशी व रोगनाशी का प्रयोग करके उत्पादन लागत खर्च को कम किया जा सकता है।

पृष्ठ 67 का शेष भाग

उपज 80–100 क्विंटल प्रति हेक्टर होती है। जबकि सुगंधित द्रव्य के रूप में कंकरीट 27.5 कि0ग्रा0 प्रति हेक्टेयर तक प्राप्त किया जा सकता है जिससे 5.500 कि0ग्रा0 शुद्ध सुगंधित द्रव्य प्राप्त होता है।

कीट एवं बिमारियाँ–

इस फूल में सामान्यता बिमारी का प्रकोप नही होता है। जल–जमाव की स्थिति में फफूँद लगने की सम्भावना होती है। जिससे पत्ती व फूल प्रभावित होते है। इसलिए इसके बचाव के लिए बाविस्टीन ग्राम प्रति लीटर (0.2%) की दर से घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

कीट में मुख्य रूप से थ्रिप्स और माइट का आक्रमण होता है। जो कि पत्ती और फूल दोनो को प्रभावित करता है। थ्रिप्स के नियन्त्रण के लिए मेटासिटाक्स 0.2 प्रतिशत का घोलकर 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए तथा माइट के नियन्त्रण के लिए मोनोक्रोलोफास 0.05% का घोल बनाकर छिड़काव करें।

अधिक दूध उत्पादन हेतु पशुओं की देख–रेख

डॉ0 कमलेश सिंह
सह–प्राध्यापक, पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

दूध व्यवसाय की सफलता, दुधारू पशुओं की समुचित देखभाल और उचित रख–रखाव पर पूर्णतः निर्भर करती है। व्यवहारिक तौर पर अक्सर देखा जाता है कि हमारे पशुपालक दुधारू पशुओं की गर्भावस्था में उचित खान–पान और देखभाल में लापरवाही बरततें हैं, जिनका दूरगामी कुप्रभाव पैदा होने वाले बच्चे के भविष्य के सम्पूर्ण स्वास्थ्य और आने वाले दुग्ध काल में दुग्ध उत्पादन पर अत्यन्त हानिकारक साबित होता है। इसलिये जॉच के उपरान्त यह पता लग जाये कि पशु ने गर्भ धारण कर लिया है, तो हमें ऐसे दुधारू पशुओं का विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता होती है और उनकी भोजन व्यवस्था एवं उनके अच्छे प्रबंधन पर विशेष ध्यान देकर, अधिक दुध प्राप्त कर, ज्यादा लाभ कमाया जा सकता है।

खान–पान :– गर्भावस्था में मादा पशु के खान–पान की जरूरत उनकी सामान्य अवस्था से कुछ अधिक होती है क्योंकि उनकों जीवन निर्वाह के अतिरिक्त बच्चे (भ्रूण) के पूर्ण विकास एवं दुध उत्पादन के लिये भी पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। खान–पान में लापरवाही से पोषक तत्वों की कमी के कारण मादा पशु अगले व्यान्त की तैयारी नहीं कर पाती और दुध उत्पादन में कमी आ जाती है।

पशुओं से अधिक दूध प्राप्त करने के लिये पौष्टिक आहार का काफी महत्व है। दूध ज्यादा देने की वजह से इन पशुओं की शारीरिक क्रियाएँ भी तेज होती है जिसके कारण इनके शरीर को राशन की अधिक आवश्यकता पड़ती है। दूध उत्पादन के लिये पशुओं को आवश्यक दैनिक चारे के अतिरिक्त राशन की आवश्यकता होती है। पशुओं को व्याने के कुछ समय पूर्व से ही व्याने तक अतिरिक्त राशन अवश्य देना चाहिये। यह अतिरिक्त राशन देने से पशु शरीर मे पोषक तत्वों का जमाव अच्छा होता है। जिससे आने वाले व्यान्त में पशु अधिक दूध देते हैं। दूधारू पशुओं के राशन के सम्बंध में निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये–

पशुओं को आहार उनके भारीर भार तथा दूध देने की क्षमता के अनुसार देना चाहिये :– 100 किगा0 शरीर भार पर गाय को 2–2,1 / 2 किग्रा0 तथा भैस को 2,1 / 2–3 किग्रा0 शुष्क पदार्थ देना चाहिये और गाय की 3 ली0 तथा भैस को 2,1 / 2 ली0 दूध पर 1 किग्रा0 दाना अतिरिक्त देना चाहिये।

–जो चारा पशुओं को खिलाया जाय वह उत्तम किस्म का तथा सही समय पर कटा होना चाहिये।

–दाने व खली को खिलाने के पूर्व दल लें, भिगों लें तथा आवश्यकता पड़ने पर उबाल लें।

–दुधारू पशुओं को चारा दाना के अतिरिक्त 60 ग्राम नमक तथा 30 ग्राम हड्डी का चूरा अवश्य देना चाहिये।

–पशुओं को पीने के लिये पर्याप्त शुद्ध जल दें :– आहार के साथ ही पानी का भी महत्व है। औसत पशु को प्रतिदिन लगभग 30–35 लीटर पानी की आवश्यकता पड़ती है। उनसे जितना दूध प्राप्त होता है उसका लगभग चार–पॉच गुना अतिरिक्त पानी पिलाया जाना चाहिये।

अच्छा तो यह होता है कि पशुओं के वाड़े में स्वच्छ पानी का स्थायी प्रबन्ध किया जाय ताकि वे इच्छानुसार पानी पी सकें।

प्रबन्धः

– प्रबन्ध में नियमितता का सदा ध्यान रखना चाहिये :– उसे समय पर भोजन मिले, समय पर पानी पिलाया जाय और उसके दूध दूहने का भी एक निश्चित समय हों। ऐसा नहीं होने पर वह समय पर इन्तजार करती है और चंचल हो उठती है जिससे उसके दूध उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

– दूध दोहन सदैव शिघ्रता से, शान्ति से एवं पूर्णतया करना चाहिये : –

शीघ्र दोहन : – दूध दूहने के पूर्व रोजाना जो क्रियाएँ होती है जैसे– बछड़े को थन के सम्पर्क में आने पर, बछड़े या बाल्टी की आवाज सुनकर, ग्वाला व दाना को देखकर, या दाना को खाकर थन की त्वचा में स्थित नाडियॉ, मस्तिष्क में स्थित हाइपोथैलमस को सक्रिय कर देती है,

जिसके प्रभाव से पश्चपियूटरी ग्रन्थि, ऑक्सीरोसीन नामक हार्मोन, रूधिर परिवहन में छोड़ती है।

आक्सीटोसीन नामक हार्मोन रक्त संचार द्वारा अयन में पहुॅचकर मांशपेशियों को संकुचित करता है जिससे अयन में दबाव उत्पन्न होता है। जिसके कारण थन, दूध से भर जाने के कारण शख्त तथा फूला हुआ हो जाता है। तब हम उसे दूध का उतरना कहते है और दबाव देने पर दूध बाहर आने लगता है। यह ध्यान देना चाहिये कि ऑक्सीटोसीन हार्मोन का असर मात्रा 7 मिनट तक ही रहता है। अतः शीघ्र दोहन से ही दूध की पूरी मात्रा मिल जायेगी अन्यथा हार्मोन का प्रभाव समाप्त हो जायेगा और दूध पूरा नहीं निकल पायेगा।

–शान्त दोहन :– अचानक कोई स्थिति पैदा होने पर पशु डर जाता है या उत्तेजित हो जाता है तब एड्रिनल ग्रन्थि से एक हार्मोन (एड्रिनेलीन) निकलता है जो रक्त संचार द्वारा अयन में आता है और आक्सीटोसीन हार्मोन के प्रभाव को समाप्त कर देता है जिससे दूध नलिकाएँ सिकुड़ जाती है और दूध निकलना बन्द हो जाता है।

–पूर्ण दोहन :– दूध दूहने की सही विधि (पूर्ण हस्त विधि) द्वारा दूध की पूरी मात्रा निकाल लेनी

शेष भाग पृष्ठ 96 पर

गोंद कतीरा के फायदे एवं उपयोग

रिचा सिंह[1], आलोक कुमार मौर्या[2] एवं नन्दनी सिंह[3]

[1]भोजन एवं पोषण विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)

[2]आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, सी.एस.ए. कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, (उ.प्र.)

[3]भोजन एवं पोषण विभाग, सी.एस.ए. कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, (उ.प्र.)

गोंद कतीरा पेड़ से निकाला जाने वाला गोंद है। यह कई रोगो में रामबाण की तरह काम करता है। इसक पेड़ कांटेदार होता है। यह भारत में गर्म एवं पथरीले क्षेत्रों में पाया जाता है। इसकी छाल काटने और टहनियों से जो तरल पदार्थ निकलता है वही जमकर सफेद पीला हो जाता है और पेड़ का गोंद कहलाता है। यह स्वाद में तीखा होता है, इसको रातभर भिगोकर रखने पर यह ट्रांसपेरेंट हो जाता है। यह ठंडी तासीर का होता है। इसलिए इसका उपयोग गर्मीयों में किया जाता है। सर्दी में इसका सेवन उचित नहीं माना जाता है। इसका उपयोग विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने के लिए किया जाता है।

1. गर्मी से राहत एवं जलन में रामबाणः–

टगर आपके हाथ–पैर में जलन की समस्या हो तो 2 चम्मच कतीरा को रात को सोने से पहले 1 ग्लास पानी में भिगों दे। सुबह कतीरा फूल जाये तो इसमें शक्कर मिलाकर खाएं। कतीरा लू और गर्मी स्ट्रोक से भी बचाता है, शरीर में गर्मी महसूस होने पर कतीरा को पानी में भिगों ले और इस पानी में मिश्री मिलाए, शर्बत के साथ कतीरा को सुबह–शाम लें। इससे शरीर की गर्मी दूर होती है।

2. शरीर में खून की मात्रा बढ़ायेः–

गेंद कतीरा में फोलिक एसिड और प्रोटीन भरपूर मात्रा में पाया जाता है, जो शरीर में खून को बढ़ाने का काम करता है। 10–15 ग्रा0 गोंद कतीरा को पानी में रातभर के लिए भिगो दें और सुबह इसे मिश्री वाले पानी में मिलाकर शरबत बनाकर पीजिए ऐसा रोजाना करने से शरीर में खून की कमी से छुटकारा मिलता है।

3. कब्ज दूर करेः–

गेंद कतीरा में कब्ज से मुक्ति दिलाने वाले गुण पाये जाते है। गोंद कतीरा को पानी में भिगोने के बाद जब गोंद फूल जाए तो इसमें नींबू का रस और ठंडे पानी को मिलाकर पीना चाहिए। गोंद कतीरा का

स्वाद नहीं होता है। इसलिए आप इसमें नींबू पानी में थोड़ी मिश्री भी मिला सकते हैं गोंद कतीरा को पीने से कब्ज से छुटकारा मिलता है।

4. महिलाओं के लिए बेहद फायदेमंन्दः–

महिलाओं में मासिक धर्म में अनियमितता के चलते अक्सर फोलिक एसिड या खूंन की कमी हो जाती है। इसके अलावा बच्चा होने के बाद की कमजोरी महावारी की गड़बड़ी या ल्यूकोरिया जैसी समस्याओं में भी ये फायदेमंद होता है। गोंद कतीरा और मिश्री को साथ में पीस लें, फिर इसे दो चम्मच कच्चे दूध में मिलाकर खायें। वहीं गोद के लडडू भी बेहद फायदेमंद होते हैं।

5. माइग्रेन में लाभकारीः–

4 ग्राम मेंहदी के फूल और 3 ग्राम कतीरा मिट्टी के बर्तन में भिगोकर रख दें। इसे रात में भिगोए और सुबह मिश्री के साथ मिलाकर पिए। सिरदर्द, माइग्रेन से छूटकारा मिलने के साथ ये बाल झड़ना भी कम करेगा।

6. स्वप्नदोषः–

स्वप्नदोष की समस्या है तो रात में 1 कप पानी में 6 ग्राम गोंद कतीरा भिगों दे, सुबह ये फूल जाए तो इसमे 12 ग्राम मिश्री मिलाकर खाए। कुछ ही दिनों में आपको इसका लाभ महसूस होगा।

8. मूत्ररोग में फायदाः–

मुत्ररोग में भी गोंद कतीरा फायदेमंद है 10–20 ग्राम गोंद कतीरा पानी में फूलाकर इसे मिश्री के साथ मिलाएं और शर्बत बनाकर पिंए।

9. त्वचा के लिए गोंद कतीरा के लाभः–

गेंद कतीरा का प्रयोग एंटी–एजिंग के लिए चेहरे का मास्क बना सकते हैं। रात में पानी में कुछ गोंद भिगोएं अगली सुबह अण्डे के सफेद भाग के 2 चम्मच, 1 बड़ा चम्मच दूध पाउडर और 2 चम्मच बादाम पाउडर और 1 चम्मच हरी सब्जी पाउडर आदि को भीगे हुए गोंद कतीरे में मिलाएं। इन सभी को चिकना होने तक अच्छी तरह मिलाकर मिश्रण गले और चेहरे पर लगाकर 20 मिनट बाद धोले। यह त्वचा के लिए लाभकारी होता है। गोंद कतीरा रात में भिगोकर सुबह उसको हाथ पर मसल कर चेहरे और शरीर पर लगाने से सनबर्न और दाग ध्ब्बे समाप्त हो जाते है। इसको फेसपैक की तरह पूरे शरीर में लगाकर आधे घंटे के बाद धो सकते है।

नोटः– अगर आपको कफ, जुकाम, नजला, रहता है तो गोंद कतीरा का सेवन कम या नही करना चाहिए। ये ठण्डे तासीर का होता है जो कि इसका सेवन कफ, जुकाम, नजले में उचित नही होता है।

भैंस पालन में सफलता हेतु महत्वपूर्ण तथ्य

डॉ0 कमलेश सिंह
सह–प्राध्यापक, पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी0जी0 कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.),

हमारा देश कृषि प्रधान देश है। भारत के अधिकांश किसान अपने परिवार के उपभोग के लिये दूध प्राप्त करने हेतु एक या अधिक भैंस रखते हैं। अधिकतर वे परिवार के इस्तेमाल के बाद बचे हुये दूध को बेचकर नियमित रूप से नकद आय भी प्राप्त करते हैं। संसार में भारत सबसे अधिक भैंस की संख्या वाला देश है। देश के कुल दूध उत्पादन का लगभग आधे से अधिक (52 प्रतिशत) दूध भैंसों से ही प्राप्त होता है। भारत में मुर्रा, निली, रावी, सुरती, मेहसाना, भदावरी, नागपुरी एवं जफराबादी आदि नस्लें प्रमुख है। भारतीय मुर्रा प्रजाति की भैंसे तो विदेश में शानदार प्रदर्शन भी कर रहीं हैं। पशु की भोजन व्यवस्था एवं उनकें अच्छे प्रबन्धन पर विशेष ध्यान देने उनकी दूध उत्पादकता तथा कार्य क्षमता दोनों बढ़ जाती है।

भोजन व्यवस्था :– पशुपालन में कुल लागत पर अधिकतर हिस्सा लगभग–60–70 प्रतिशत केवल पशु की भोजन व्यवस्था पर ही होता है। इसलिये लाभकर पशुपालन के लिये पशुपोषण पर ध्यान देना बहुत जरूरी है। इसके लिये पशु की पोषण सम्बंधी आवश्यकता एवं आवश्यक खाद्य पदार्थों की उपलब्धता को ध्यान में रखकर भैंसों के लिये सस्ता, उपयोगी, सुविधाजनक एवं आवश्यकतानुसार राशन का उपयोग कर भैस पालक ज्यादा लाभ कमा सकते हैं।

–जिन दिनों भैस दूध नहीं दे रही हो तो वह अपनी आहार की आवश्यकता को 6 –8 घण्टे चारागाह मे चरकर पूरी कर लेती है। लेकिन यदि चारागाह निम्न स्तर का है तो उनकों पेड़ों के पत्ते, भूसा, धान का भूसा या ज्वार की कड़वी आदि खिलानी चाहिये। यदि चरने की सुविधा उपलब्ध न हो और पशु दूध दे रहा हो तो पशु को उनके शरीर भार के हिसाब से चारा–दाना देना चाहिये।

– राशन में चारा तथा दानें का सही अनुपात होना चाहिये : – इसके लिये कुल राशन का एक भाग सूखा चारा, एक भाग हरा चारा और एक भाग दाना से देना चाहिये और जो चारा पशुओं खिलाया जाय व उत्तम किस्म का तथा सही समय पर कटा होना चाहिये। पशु को चारा व दानें के अतिरिक्त 60 ग्राम नमक और 30 ग्राम हड्डी का चूरा अवश्य देना चाहिये।

–पशुओं को पीने के लिये पर्याप्त शुद्ध जल दें :– आहार के साथ ही पानी का भी महत्व है। औसत पशु को प्रतिदिन लगभग 30–35 लीटर पानी की आवश्यकता पड़ती है। उनसे जितना दूध प्राप्त होता है उसका लगभग चार–पॉच गुना अतिरिक्त पानी पिलाया जाना चाहिये। अच्छा तो यह होता है कि पशुओं के बाड़े में स्वच्छ पानी का स्थायी प्रबन्ध किया जाय ताकि वे इच्छानुसार पानी पी सकें।

प्रबन्धनः–

– प्रबन्ध में नियमितता का सदा ध्यान रखना चाहिये :– उसे समय पर भोजन मिले, समय पर पानी पिलाया जाय और उसके दूध दूहने का भी एक निश्चित समय हों। ऐसा नहीं होने पर वह समय पर इन्तजार करती है और चंचल हो उठती है जिससे उसके दूध उत्पादन और कार्य क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

–वातावरण के कुप्रभाव से बचाने के लिये उनका उचित रख–रखाव अति आवश्यक है– पशु को अधिक गर्मी व सर्दी दोनों से बचाना चाहिये। कोशिश यह करनी चाहिये कि पशु को गरमी के मौसम में ठंढे स्थान पर रखा जाय। भैंसों को गर्मी के दिनों में 2 –3 बार नहलाना आवश्यक है।

सर्दी के मौसम में पशु को बहुत ज्यादा खुले स्थान पर जहॉ ठंढी हवा लगे व छाया हो वहॉ नहीं बॉधना चाहिये। ज्यादा सर्दी होने पर कपड़ा उसके शरीर पर डाल देना चाहिये।

–व्यायाम का प्रभाव :– पशुओं को रोज चलायें –फिरायें और दिन में एक बार खुरहरा अवश्य करें। पशु को खुरहरा करने से टूटे बालों का अलग होना, गन्दगी दूर होना एवं पशु के पूरे शरीर का निरीक्षण इत्यादि कार्य एक साथ सम्पन्न हो जाता है और साथ ही रक्त संचार बढ़ जाता है। जिससे पशु स्वस्थ्य रहकर अधिक उत्पादन करता है।

–टीकाकरण :– समय से टीकाकरण न कराने पर बीमारियों का डर रहता है। किसी भी बीमारी के होने पर पशु आहार खाना बन्द कर देता है जिससे उसकी उत्पादकता घट जाती है। यदि इन सभी बतायी गयी बातों पर विशेष ध्यान देकर किसान अपने पशुओं की देख–भाल करें तो पशु स्वस्थ्य रहेंगे और उनसे अच्छी आय प्राप्त होगी और किसान भाई खुशहाल रहेंगे।

एवियन एन्फ्लुन्जा (बर्डफ्लू)

[1]अजित सिंह, [2]डांखम जेम्स सिंह एवं [3]गौरव जैन

[1]पशु चिकित्सा अधिकारी, पशु चिकित्सालय चिल्ला, प्रयागराज, (उ.प्र.)

[2,3]पशु पालन एवं दुग्धशाला विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज, (उ.प्र.)

एवियन एन्फ्लुन्जा एक वायरल संक्रमण है जो पक्षियों से पक्षियों में फैलता है तकनीकि तौर पर H5N1 एक उच्च रोग जनक वायरस है यह पक्षियों के लिए अत्यंत घातक है इसके अलावा यह मनुष्यों के लिए भी घातक है क्योंकि वो भी पक्षियों के सम्पर्क में रहते हैं सामान्यतः यह पक्षियों को संक्रमित करता है परन्तु यह सुअर व अश्व को भी संक्रमित करता है इसके अतिरिक्त विपरीत परिस्थितियों में (SPECIES) स्पीसीज बेरियर को पारकर मनुष्य को भी संक्रमित कर सकता है विषाणु या वायरस AB वा C प्रकार का होता है जिसमे "A" टाइप पोल्ट्री सूअर वा घोड़ो में असर होता है

एन्क्युवेशन अवधि

विषाणु के पक्षी में प्रवेश करने के कुछ घंटो से 3 दिनों तक यह अवधि विषाणु की प्रक्रति, मात्रा, प्रवेश का मार्ग तथा पक्षी के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है ।

पक्षियों में रोग का प्रसार

संक्रमित पक्षियों की आँख स्वाँश नलिका तथा बिट में आने से पक्षियों या मनुष्य में फैलता है संक्रमित पक्षियों या कुक्कुट के प्रयोग में आने वाली समस्त सामग्रियों व उपकरणों के सम्पर्क में आने से रोग फैल सकता है । विदेशी प्रवाशी व जंगली पक्षी इस रोग के वाहक है अतः इनके सम्पर्क से पक्षियों में रोग फैल सकता है ।

लक्षण : बर्ड फ्लू मनुष्यों में अलग अलग हो सकते है शुरुआती दौर में यह आम फ्लु के लक्षण हो सकते हैं जो धीरे धीरे घातक साबित हो सकता है इस बीमारी का पता लगाने के लिए बलगम की जाँच करायी जाती है इससे पता चल जाता है की व्यक्ति H5N1 वायरस से संक्रमित है या नही ।

पक्षियों में मुख्य लक्षण

- पक्षी को ज्वर आना
- पेटल कलगी व पैरो का बैंगनी होना

- पक्षियों में गर्दन तथा आँखों के निचले हिस्से में सूजन
- हरे व लाल रंग की बीट

मनुष्यों में लक्षण

- सर्दी जुखाम खाशी
- गले में खराश मांस पेशियों में दर्द
- साँस लेने में तकलीफ होना
- यकृत गुर्दा व फेफड़ो का काम करना बंद करना

मरत पक्षी में लीजन

- श्वास तंत्र में फाई ब्रिनस द्रव्य का भरा होना
- पैरो का बैंगनी होना तथा कलगी का लाल होना
- यकृत तित्ली व गुर्दे पर नेक्राटिक फोकई

संदेहास्पद या OUT BREAK की स्तिथि में किसी भी प्रकार से पोस्ट मार्टम (शव विशछेदन) ना किया जाय ।

मरत पक्षी को सील बंद कर कोल्ड चैन (COLD CHAIN) में एच० एड० ए० डी० ल० प्रयोगशाला भोपाल को जाँच हेतु भेजा जाना चाहिए ।

बचाव

पक्षी फार्म पक्षी अभ्यारण्य जलाश्य व झील के आस पास न हो ।

पक्षी फार्म के आस पास सूअर ना पाले ।

फार्म के आस पास सफाई रखे तथा कूड़ा व गंदगी इक्ठा ना होने दें ।

मरत पक्षियों का निस्तारण गढ्ढे में दबाकर किया जाये ।

नियमित रूप से फार्म का लिटर बदलते रहे तथा समय समय पर (प्रति 15 दिन पश्चात) विसंक्रमण कार्यवाही करते रहे ।

एक खास बात यह भी है कि इसके बचाव के लिए किसी भी VACCEIN के टीके की खोज नही हुई है ऐसे में कोशिश करे की मरे हुए पक्षियों से दुरी बनाये रखें ।

जब इस प्रकार की बीमारी की संक्रमण की बात सामने आए तो कोशिश करे मांस कम से कम खाए क्योंकि यह बीमारी ज्यादातर मुर्गे मुर्गियों बतख आदि से फैलती है परन्तु अगर मांस को ठीक प्रकार से पकाया गया है तो चिकन खाने के लिए सुरक्षित है ।

धनियाँ की वैज्ञानिक खेती

डॉ. मनोज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

धनियां की खेती भारत के सभी प्रदेशो में उगायी जाती है। रवी मौसम में उगायी जाने वाली मसालों में धनियों का प्रमुख स्थान है। धनियां का फल गोल, रेशेदार पीले–भूरे और व्यास मे 2–4 मि0मी0 होती है। दबाने पर फल दो भागों में बँट जाता है जिसमे एक–एक बीज होता है।

औषधीय दृष्टिकोण से धनियां के बीज पाचक, पित्तनाशक, वायुनाशक एवं तापहर होते है। मुंह की दुर्गंध दूर करने के लिए बीज चबाते हैं। धनियां विशेष रूप से दूसरी औषधियों की गंध को दबाने के काम आता है।

भूमि और तैयारी–सामान्यतया धनियाँ की खेती सभी प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। लेकिन कार्बनिक पदार्थ युक्त दोमट मृदा जिसमें जल निकास का उत्तम प्रबन्ध हो सर्वोत्तम होती है। मृदा की तैयारी के लिए सर्वप्रथम मिट्टी पलट हक से गहरी जुताई करते हैं। इसके पश्चात् 2–3 बार देशी हल चलाएं ताकि मृदा समतल एवं भुरभुरी हो जाए।

खाद एवं उर्वरक–मिट्टी की जांच कराकर खाद और उर्वरक का प्रयोग करना अच्छा होता है। यदि किसी कारणवंश जांच न हो सके तो अन्तिम जुताई के समय 150–200 क्विंटल अच्छी प्रकार से सड़ी हुई कम्पोस्ट खाद तथा 200 कि0ग्रा0 सिंगल सुपर फास्फेट तथा 50 कि0ग्रा0 म्यूरेट आफ पोटाश प्रति टेक्टर की दर से मृदा में मिला दें। यूरिया 55 कि0ग्रा0 यूरिया प्रथम सिंचाई के बाद तथा 55 कि0ग्रा0 यूरिया फूल आने के पहले पर्णीय छिड़काव के रूप में देते हैं।

बुवाई की विधि एवं समय–धनियाँ से अधिक उपज प्राप्त करने के लिए सदैव पंक्तियों में बुवाई करना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25–30 से0मी0 तथा पौधे से पौधे की दूरी 15–20 से0मी0 रखते हैं। जब पौधे 5–7 से0मी0 के हो जाते है तब धने पौधे को उखाड़ कर हरी पत्ती के रूप में प्रयोग करते है। बीज को बोने के पहले दो भागों में कुचल कर लेते है। इस बात का अवश्य ध्यान रखे की बीज को 10–12 घण्टें तक पानी में भिगाने के उपरान्त ही बुवाई करें।

बीज की मात्रा एवं बीजोपचार–पंक्तियों में बुवाई करने पर लगभग 12–18 कि0ग्रा0 बीज प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता पड़ती है। पंक्तियों के उपयोग के लिए बीज की अधिक और बीज के लिए खेती करने पर अपेक्षाकृत कम बीज की आवश्यकता होती है।

बीजोपचार के लिए 4 ग्राम बाविस्टिन या केप्टान प्रति कि0ग्रा0 की दर से अच्छी मिलाकर ही बुवाई करें।

सिचांई–पहली सिंचाई बुवाई के तुरन्त बाद इसके पश्चात् 7–8 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करते हैं। रबी की फसल के लिए 4 से 6 सिंचाई पर्याप्त होती है।

निराई–गुड़ाई–जब पौध 4–5 से0मी0 के हो जाए तब खेत से खरपतवार निकाल दें तथा हल्की गुड़ाई कर दें। जब फसल में फूल आने लगे तो तब पौध के चारों तरफ मिट्टी चढ़ा दें।

कटाई एवं उपज–सामान्यतया बुवाई के 40–45 दिन बाद पत्तियों की कटाई प्रारम्भ कर देते हैं और दूसरी कटाई 15 दिन बाद करते हैं अर्थात् 15 दिन के अन्तराल पर कटाई करते रहें। प्रजातियों के अनुसार 120–150 दिन के बाद फसल तैयार हो जाती है बीज के उत्पादन की दृष्टिकोण से जैसे–ही दाने सुनहरें रंग क हो जायें फसल की कटाई करके 5–6 दिनों तक छाया में सुखाकर के पश्चात् 7–8 दिन बाद धूप में सुखाते हैं।

उपज–उन्नतशील प्रजाति, अच्छी मृदा तथा अच्छे प्रबन्धन के साथ–साथ वैज्ञानिक दृष्टिोण से खेती करने पर 50–75 क्विंटल हरी पत्तियाँ तथा 12–20 क्विंटल बीज प्रति हेक्टेयर की दृष्टिकोण से उत्पादन होता है।

रोग एवं कीट–धनियाँ में सामान्यतया फफूंदी एवं गलन रोग लगते हैं इसलिए बीजोपचार करके ही बुवाई करें। फूल आते समय मौसम खराब होने पर किसी फफूंदी नाशी जैसे मैंकोजेब या बोर्डो मिश्रण का छिड़काव अवश्यक करें।

धनियाँ में माहो (एसिड) और कटुआ (कटवर्म) कीट लगते है। इसके नियन्त्रण के लिए मेटासिस्टाक्स 0.1 प्रतिशत या कार्बनिक 0.2ः का घोल बनाकर छिड़काव करते हैं।

बदलते परिदृष्य में दूसरी हरित क्रांति की आवश्यकता

डॉ. शिव प्रसाद विश्वकर्मा
कुलभास्कर आश्रम स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रयागराज, (उ.प्र.)

''किसान की उपज का उचित मूल्य भुगतान कीजिए, ऋणों का बोझ कम होगा और आत्महत्या जैसी कोई चीज नहीं होगी।'' **(पद्मश्री डॉ0 अनिल पी0 जोशी)**

जहाँ प्रथम हरित क्रांति का प्रादुर्भाव मंहगे बीज, उर्वरक एवं सींचाई तकनीकी के सघन प्रयोग से हुआ वहीं दूसरी हरित क्रांति पूर्णतया एकीकृत पोषक तत्व, कीट एवं रोग तथा जल प्रबंधन, देशी एवं स्थानीय विशेष बीजों के प्रयोग स्थापित प्राचीन कृषि तकनीकियों तथा जैव प्रौद्योगिकी टूल का कृषि में दक्षतापूर्ण प्रयोग कर देश की आबादी की आजीविका एवं उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होगी।

हमारा देश साठवें दशक के उत्तरार्ध एवं सत्तरवें दशक के प्रारम्भ में कृषि में हरित क्रान्ति का गवाह रहा है। इस हरित क्रान्ति में अधिक उपज देने वाली प्रजातियों का प्रयोग, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग तथा सिंचाई के संसाधनों मे तेजी से विस्तार की अग्रणी भूमिका रही। इस क्रान्ति के कारण देश भुखमरी की स्थिति से उबरकर खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बना। हरित क्रान्ति का प्रार्दुभाव अमेरिका के वैज्ञानिक 'नार्मन अर्नेस्ट बोरलाग' की अगुआई में कृषि में हुए शोध, विकास एवं तकनीकी हस्तान्तरण के द्वारा सम्भव हो पाया। इस प्रयास में अपने देश के महान कृषि वैज्ञानिक 'डॉ0 एम0एस0 स्वामीनाथन' का अविस्मरणीय येागदान रहा। अधिक उपज वाली उन्नतशील किस्मों का विकास तथा आधुनिक कृषि तकनीकियों का किसानों द्वारा प्रयोग करने एवं सरकार द्वारा इनके लिए प्राथमिकता देने के कारण देश के हजारों लोगों को भुखमरी की स्थिति से बचाया जा सका। मैक्सिको एवं भारतीय उपमहाद्वीप में खाद्याान्न आपूर्ति सुनिश्चित कर विश्व शांति स्थापित करने में किये गये महत्वपूर्ण योगदान के लिए वर्ष 1970 में नार्मन बोरलाग को शान्ति के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार दिया गया।

यह क्रान्ति मुख्य रुप से अधिक अन्न उत्पादन पर आश्रित रही जिसमें फसलों की उत्पादकता में औसतन दो से चार गुना बढ़ोत्तरी हुई और देश ने कृषि क्षेत्र में ऐतिहासिक सफलता प्राप्त की जिससे देश भुखमरी की स्थिति से निपटने में पूरी तरह सफल रहा।

हरित क्रांति के दुष्प्रभाव

इस सफलता ने देश को कृषि विश्व स्तर पर एक नई पहचान दिलाई जिसमें वर्ष 1950–51 से 2006–07 के बीज औसत वार्षिक कृषि उत्पादन दर 2.5 प्रतिशत दर्ज की गई जो कि जनसंख्या वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत से अधिक रही। दुर्भाग्य से वृद्धि दर की रफ्तार लम्बे समय तक टिक नहीं पाई और वर्ष 1989–90 से अधिकांश फसलों के उत्पादन दर में गिरावट शुरु हुई और यह गिरावट औसतन 0.26 प्रतिशत की दर से अंकित की गई। यहां तक की प्रति व्यक्ति अनाज की खपत जो वर्ष 1990–91 में 486 ग्राम थी वर्श 2005–06 तक घटकर 412 ग्रा0 इसी प्रकार उक्त अवधि में दाल की प्रति व्यक्ति खपत 42 ग्राम से घटकर 33 ग्राम प्रति दिन पर सिमट गयी। हरित क्रान्ति वाले प्रदेशों में कृषि अब थकान महसूस करने लगी है और देश के सफल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का योगदान जो 1950–51 में 48.7 प्रतिशत था वह 1996–97 में घटकर 24.4 प्रतिशत हो गया तथा वर्ष 2007 तक आते–आते 18.7 प्रतिशत हो गया। जैसा कि कहा जाता है कि ''किसी सफलता प्राप्ति के लिए कुछ बलिदान करना पडता है।'' भारतीय कृषि भी इसका अपवाद नहीं बनी। सफलता की इस यात्रा के उत्तरार्ध में यह महसूस किया जाने लगा कि कृषि के इस विकास में कुछ क्रिया–कलाप या तो समय की परिस्थितियों के अनुसार मजबूरी में अथवा कुछ अदूरदर्शिता के कारण किये गये जिससे कृशि विकास के स्थायित्व पर खतरा पैदा हुआ। इस अवधि में हुए शोध एवं अध्ययनों से पता चला कि हरित क्रान्ति द्वारा अस्थायी कृषि विकास की मुख्य कमियां निम्न प्रकार रही–

1. इस अवधि में अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लालच में कृषि में सश्लेशित उर्वरकों एवं कृषि रसायनों का अन्धाधुध प्रयोग, सघन खेती पद्धति अपना कर जल श्रोतों का अत्यधिक दोहन हुआ।
2. देश की परम्परागत फसलों एवं उनकी प्रजातियों को स्थान पर अधिक लाभ वाली फसलें एवं उनकी उन्नतशील प्रजातियों की खेती की जाने लगी जो अधिकाधिक रासायनिक उर्वरकों, कृषि रक्षा रसायनों, अधिक जलमांग वाली थी।
3. हरित क्रान्ति के कारण बाद में दूसरी पीढ़ी की समस्याओं जैसे भूमि से पोषक, तत्वो ंका ह्रास, मृदा संरचना एवं मृदा गठन में खराबी, जल श्रोतों का सिमटना, (भू–जल, स्तर में गिरावट, लवणीयता, जलमग्नता एवं कृषि लागत में बढ़ोत्तरी पैदा हुई।
4. कुछ चुनिन्दा लाभकारी फसलों जैसे – गेहूँ एवं धान के क्षेत्र का तेजी से विस्तार हुआ और दलहन एवं तिलहन फसलों के क्षेत्र निरन्तर घटते जाने से इन फसलों के उत्पादन पर बुरा असर पड़ा जो घरेलू पोषण असुरक्षा के रुप में सामने आया।

5. लघु एवं सीमान्त किसानों को हरित क्रान्ति का समुचित लाभ नहीं मिला। हरित क्रान्ति देश के मात्र कुछ सिंचित क्षेत्रों जैसे पंजाब, हरियाणा एवं पश्चिमी उ0प्र0 एवं कुछ फसलों तक सीमित रही जबकि शेष असिंचित/वर्शाधारित कृषि क्षेत्र इस क्रान्ति से वंचित रहा।

6. विज्ञान की नवीन तकनीकि एवं लागतों के प्रयोग के बावजूद कीट एवं रोगकारी जीवो ंकी नई – नई किस्में विकसित हुई जिसके नियंत्रण में कठिनाई हुई तथा फसलों के उत्पादन में ठहराव आ गया।

7. हरित क्रान्ति वाले सिंचित क्षेत्र थकान का अनुभव कर रहे हैं एवं कुछ नई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे–

अ. सघन खेती पद्धति अपनाने से जल श्रोतों का अन्धाधुंध प्रयोग किया गया जिससे उनका संकुचन हुआ तथा इनके जल स्तर गिरने से सिंचाई की लागत बढ़ी, कुछ क्षेत्रों में जलमग्नता एवं भूमि की लवणीयता में वृद्धि हुई।

ब. उर्वरकों एवं पेस्टीसाइड्स के अत्यधिक प्रयोग से भूमि एवं जल का स्वास्थ्य में गिरावट आई जिसमे मुख्य रुप से पोषक तत्वों का असन्तुलन, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी एवं भूमि के अन्य गुणों मे बाधा पैदा हुई।

स. खेती की लागत मे भारी बढ़ोत्तरी होने से खेती लाभांश में कमी होती गई।

द. कीटों एवं रोगों के नियंत्रण के लिए अत्यधिक जहरीले रयायनों के अन्धाधुंध प्रयोग से मित्र कीटों एवं जीवों का नाश हुआ तथा पशुओं एव ंमानव स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो गया। साथ ही कीटों एवं रोगकारी जीवों में रसायनों के प्रति सहनशीलता पैदा हो गई।

य. सरकार की कृषि नीति मे कमी के चलते उपलब्ध बाजारु ढांचे एवं विचौलियों के कारण हरित क्रान्ति का पूरा लाभ कृषकों को नहीं मिल पाया।

दूसरी हरित क्रान्ति समय की मांग

आबादी के अनुसार विश्व के दूसरे नम्बर के देश की बढ़ती जनसंख्या वृद्धि दर, इसकी खाद्य सुरक्षा, कृषि संसाधनों पर बढ़ता दबाव, निरन्तर घटती योग्य भूमियां एवं खेती की बढ़ती लागत तथा जलवायु परिर्वन जैसी चुनौतियों के दृष्टिगत सभी वैज्ञानिक एक मत हैं कि देश में दूसरी हरित क्रान्ति की सख्त आवश्यकता है। इस हरित क्रान्ति का विवेकपूर्ण एवं दूरदर्शीपूर्ण एवं क्रियान्वयन इस प्रकार किया जाय जिसमें पूर्व हरित क्रान्ति की कमियों को दूर करते हुए भविष्य की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके तथा कृषि विकास में स्थायित्व आ सके।

कृषि में अन्धाधुंध उर्वरकों, कीटनाशकों व अन्य कृषि रसायनों के प्रयोग के बावजूद अब

फसलों की उत्पादकता बढ़ाये नहीं बढ़ रही है। हरित क्रांति वाले राज्यों पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पैदावार बढ़ नहीं पा रही है बल्कि धान एवं गेहूं जैसी प्रमुख फसलों की उपज या तो स्थिर हो गयी है या घट रही है। इसके लिये जहां किसानों को खेती की तकनीक में बदलाव पर जोर देने की जरुरत है वहीं वैज्ञानिकों को बदलती जलवायु आधारित तकनीकी का विकास करना होगा और सरकार को किसानों के उत्पादों का उचित मूल्य दिलानें एवं कृषि आय बढ़ाने के लिये ठोस नीति बनानी होगी। हालांकि दूसरी हरित क्रांति के लिये देश के पूर्वी क्षेत्र के राज्यों का चुनाव किया गया है किन्तु इस दिशा में किये गये प्रयास अप्रयाप्त हैं। इसलिए अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं। सार्थक परिणाम पाने के लिए द्वितीय हरित क्रान्ति के अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दुओं पर विशेष ध्यान देना होगा–

1. नीतिगत मुददों का समाधान

अ. कृषि जोतों का छोटी जोतों में विखण्डन को रोकने के लिए कानून का निर्माण करना

ब. वनों की सुरक्षा के तर्ज पर घटती खेती की भूमियों के नियंत्रण के लिए कृषि के अन्तर्गत न्यूनतम प्रतिशत का कानून निर्धारण किया जाये।

स. किसानों की उपज क्रय एजेन्सियों द्वारा सीधे खेतो से किया जाय।

द. कृषि जलवायु क्षेत्रों में उगायी जाने वाली फसलों के लिए 'विशिष्ट फसल जोन' घोषित कर किसानों की मदद की जाय।

2. सस्ती, सरल एवं उत्कृष्ट तकनीकी का परिभाुद्धतापूर्ण प्रयोग

अ. लघु एवं सीमान्त कृषकों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों द्वारा सस्ती, सरल, स्थानीय आवश्यकतानुसार, सामाजिक रुप से स्वीकार्य कृषि तकनीकियों का विकास किया जाये।

ब. द्वितीय हरितक्रान्ति तभी सफल होगी जब इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के फसलों के साथ–साथ फल, सब्जियां, वनस्पति तेल, मसाले, औषधीय एवं संगन्ध फसलों पर भी विशेष जोर दिया जाये।

3. अतिरिक्त संसाधन जुटाना

कृषि आधारित उद्यमों जैसे मुर्गीपालन, बकरी पालन, मत्स्य पालन, पशु पालन, मधुमक्खी एवं मशरुम उत्पादन के साथ अतिरिक्त आय प्राप्त करने के लिए स्थानीय हस्तशिल्प को भी सम्मिलित किया जाय।

4. कृषि स्थायित्व हेतु स्मार्ट तकनीकि

आधुनिक कृषि तकनीकियों उन्नत एवं गुणवत्तायुक्त बीज, विभिन्न फसलों में पोशक तत्वों

का परीक्षण आधारित आवश्यकतानुसार संतुलित प्रयोग फसल आधारित समन्वित कीट एवं रोग प्रबन्ध के प्रयोग से पर्यानुकूल स्थायी कृषि का विकास होगा।

5. वित्तीय संस्थानों की सीापना

कृषकों की वित्तीय सहायतार्थ स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्र कृषि बैंक स्थापित किये जायें।

6. जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को दृष्टिगत रखते हुये द्वितीय हरित क्रान्ति की संकल्पना की जाये तथा दूरदर्शी सोच के साथ स्थायी विकास हेतु परियोजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन किया जाये।

द्वितीय हरित क्रान्ति के लिए उपयुक्त क्षेत्र एवं फसलें

वैज्ञानिकों का यह मत है कि देश में द्वितीय हरित क्रान्ति के लिए देश का पूर्वी भाग जैसे आसाम, पंश्चिम बंगाल, उड़ीसा, बिहार, छत्तीसगढ़, पूर्वी उ0प्र0 एवं झारखण्ड राज्य सर्वाधिक उपयुक्त होंगे क्योंकि यहां भूमि की उर्वरता, सिंचाई हेतु जल तथा सौर विकिरण की पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

इन क्षेत्रों में कुछ विशेष फसलों जैसे गेहूँ, धान, मक्का, मोटे अनाज, दलहनों तथा तिलहनों की उपज बढ़ाने को पर्याप्त सम्भावनाएं हैं।

पृष्ठ 83 का शेष भाग

चाहिये अन्यथा दूध उत्पादन कम हो जायेगा।

–एक दिन में 2 याद 3 बार दूहाई निर्धारित समय पर करने से दूध की मात्रा अधिक प्राप्त होती है।

–व्यायाम का प्रभाव :– पशुओं को रोज चलायें–फिरायें और दोहन के पूर्व खुरहरा करें
जिससे रक्त संचार बढ़ जाता है जिससे दूध की मात्रा अधिक प्राप्त होती है।

–टीकाकरण :– समय से टीकाकरण न कराने पर बीमारियों का डर रहता है और बीमारी
दूध के गुणों एवं मात्रा दोनों को प्रभावित करती है। किसी भी बीमारी के होने पर पशु आहार खाना बन्द कर देता है जिससे उससे प्राप्त दूध की मात्रा घट जाती है।

यदि इन सभी बातों पर विशेष ध्यान देकर पशुपालक अपनी दूधारू पशुओं की देखभाल करे तो निश्चितरूप से उन्हें अधिक दूध उत्पादन मिलेगा। जिससे उनकी आय प्राप्त होगी और वे खुशहाल रहेंगे।

एलोवेरा की खेती

डॉ. सूर्य नारायण
सह–प्राध्यापक
उद्यान विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

यह एक मांसल पौधाा हैं एवं अधिक वर्षा व अधिक गर्मी में पनपने वाला पौधा है परंतु सूखे एवं कम वर्षा की दशा में भी यह अच्छी तरह पनपता है। इसकी पत्तियां मांसल होती हैं एवं इन्हीं पत्तियां को संसाधित करके औषधियां, सौंदर्य प्रसाधन, पोषक तत्व, प्रतिजैविक, प्रति सूक्ष्मीजीवी, अमीनों अम्ल, वसा प्रथा अनगिनत मानव कल्याणकारी उत्पाद तैयार किए जाते हैं। बहुउद्देशीय पौधा होने के कारण इसकी बाजार में बड़ी मांग है। किसान भाई इसकी तैयारी पोषक तत्व प्रबंधन, उन्नतशील प्रजातियां, रोपण विधि, अंतः सस्यन, जल निकास, फसल कटाई तथा विपणन पर ध्यान देना होगा। एलोवीरा की जड़े जमीन की गहराई में लगभग 1 फीट तक जाती हैं। इसीलिए इसकी खेती उथली मृदाओं में भी सफलतापूर्वक की जाती है। पौधे का भार बलुई दोमट में सबसे अधिक होता है। इसीलिए बलुई दोमट भूमि सबसे अच्छी रहती है । मृदा का जल निकास अच्छा होना चाहिए। दिन भर से ज्यादा देर तक पानी ठहरने पर जड़े सड़ने लगती हैं। मृदा का PH मान 6:00 से कम नहीं यानी ज्यादा अम्लीय नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे पत्तियों का आकार तथा मांसलपन कम हो जाता है और पत्तियां ही हमारी मुख्य उपज है। क्षारीय भूमि जिसका PH मान 9:00 तक है खेती की जा सकती है। पोषक तत्व चूसने वाली जड़े स्पंजी होती है जिन्हें कार्य करने हेतु बलुई मिट्टी में आधार की आवश्यकता होती है यह टिकाव केवल जीवांश पदार्थ दे सकता है। किसान भाईयों स्पष्ट है कि जैविक खाद इसकी खेती की सबसे बड़ी आवश्यकता है यदि जैविक खाद–गोबर की खाद, कंपोस्ट आदि उपलब्ध नहीं है तो इसकी खेती से में लाभ नहीं होगा । पहली जुताई तवेदार हल या रोटावेटर से करें जो लगभग 1 फीट नीचे की मिट्टी ऊपर कर दे। अब दूसरी जुताई कल्टीवेटर से करके पाटा लगाए तथा खेल को समतल करने ले। आवश्यकता हो तो हैरो चलाकर खरपतवार इकट्ठा कर नष्ट कर दे। अब 30 टन प्रति हेक्टर की दर से जीवांश खाद बिखेर कर उथला कल्टीवेटर चलाकर मिला दे व पाटा लगाएं। यदि जीवांश याद पर्यान्त न हो तो खेत में खाद बिखेरे नहीं बल्कि पौधरोपण के समय 30 किलो प्रति पौधा गड्ढे में भरकर रोपण करें। यदि

खरपतवार ज्यादा पनपते हो तो डाईयरान 2 किलो मात्रा 1000 लीटर पानी में घोलकर अंतिम जुताई से पहले खेत में छिड़क कर मिला दें। वर्तमान में प्रचलित उन्नतशील किसी भी प्रजाति का रोपण कर सकते है।

केवल अधिक जाड़े के दिनों को छोड़कर वर्ष के किसी भी दिन रोपण कर सकते हैं। वर्ष ऋतु एवं फरवरी–मार्च में पौधारोपण उत्तम रहता है। रोपण हेतु जड़ सकर एवं राइजोम के टुकड़े प्रयोग किए जाते हैं परन्तु किसान भाई केवल जड़ सकर का प्रयोग करें क्योंकि जड़ सकर सीधे खेत में रोपित कर सकते हैं। जबकि टुकड़ो को पहले नर्सरी में लगाना होगा तथा कल्ले फूटने पर रोपित् करना होगा जिससे लागत बढ़ जाएगी। सकर 3 महीने पुराने तथा सीधे होने चाहिए। टेढ़े सकर का रोपण न करें नहीं तो पत्तियों की संख्या कम बनेगी। 3 माह से अधिक उम्र के सकर रोपित्त करने पर खेत में स्थायित्व देरे से आता है। जिससे पत्तियों के निकलने का क्रम देरे से प्रारंभ होगा और पत्तियों की तुड़ाई साथ न करके आगे पीछे करनी होगी। जिससे तुड़ाई की संख्या तथा लागत बढ़ जाएगी। ज्यादा पुराने सकर का जीवनकाल 3 वर्ष से ज्यादा नहीं रहता जब कि 3 माह पुराने सकर से जब 5 वर्ष तक पत्तियों का उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। सकर 20–25 सेंटीमीटर लंबा तथा चार–पांच पत्तियों युक्त होना चाहिए। कोशिश करे कि सभी सकर भार एवं आकार में लगभग समरूप हो। क्योंकि सकर का एक बार रोपड़ करके 5 वर्ष पत्तियां प्राप्त की जा सकती है। अतः 30 सेंटीमीटर आकार के गड्ढ़े में खाद भरकर सकर रोपड़ करें। 60–30 सेंटीमीटर रखें और सीधा रोपित करें। रोपण के तुंरत बाद हल्की सिंचाई करें। पौध रोपण के बाद शीघ्र चले इस हेतु 20 मिलीग्राम जिबरेलिन हार्मोन 1 लीटर पानी में घोलकर बनाकर आधां घंटा तक जड़ों को डुबोएं। रोपड़ के 1 माह बाद पौधे के 15 सेंटीमीटर गोलाई में इस प्रकार मिट्टी चढ़ाएं की पत्ती के नीचे जितना तना हो ढ़क जाए। तना से मिट्टी की ढाल न बनाएं बल्कि चौरस रखें। पत्तियों की संख्या में वृद्धि होगी। उत्पादन बढ़ेगा। तने के बगल से नए–नए किल्ले निकलना आरंभ हो जाएंगे। इन तनों को तेज धारदार चाकू की सहायता से 2–4 जड़ों सहित अलग कर नर्सरी में रोपित कर सकते हैं अैर एक माह बाद बेच सकते हैं या खेत में रोपित कर सकते हैं। यदि सकर की जरूरत ना हो तो नीचे से न काटकर ऊपर से ही अलग कर दें। यदि 100 गेज मोटी पालीथीन विछावन के रूप में खेत में बिछा सके तो उत्पादन में बहुत अधिक बढ़वार हो जाती है। यदि यह ना कर सके तो पौधे के चारो तरफ कंपोस्ट या गोबर की खाद 2 इंच मीटी बीछाकर खुरपी की सहायता से इस प्रकार थपथपाएं कि कठोर परत बन जाए यह परत बिछावन का काम करेगी। इससे खरपतवार कम निकलेंगे। लाभदायक सूक्ष्म जीवी की सक्रियता बढ़ेगी। पोषक तत्व कम देने पड़ेगे। तापमान समरस रहेगा।

जिससे जिससे जाड़े की एक तुड़ाई अतिरिक्त जिल जाएगी और खेत की लागत इस अतिरिक्त उपज से निकल आएगी। जहां तक पोषण का प्रश्न है जैविक खाद के अतिरिक्त जितनी बार तुड़ाई करे उतनी बार 30 ग्राम यूरिया, 30 ग्राम डाई अमोनियम फॉस्फेट तथा 30 ग्राम म्यूरेट आफ पोटाश को मिश्रित कर तुड़ाई के अगले दिन तने के चारो ओर बिखेर दे। पत्तियों का भार बढ़ाने हेतु नेफथलीन एसिटिक एसिड 100 मिलिग्राम प्रति लीटर पानी घोल बनाकर पत्तियों की तुड़ाई के 1 माह पूर्व छिड़काव करें। पौधा नमी की उपस्थिति में तेजी से वृद्धि करता है अतः खेत में नमी बनाए रखे। पत्तियाँ की तुड़ाई के 1 सप्ताह पहले यदि नमी कम लगे तो सिंचाई अवश्य करे। इससे उपज का भार बढ़ता है तथा पौधे की जल मांग भी पूरी हो जाती हैं। सिंचाई हमेशा हल्की करें। क्योंकि पौधे की स्पंजती जड़े बलुई मिट्टी में हल्की नमी की दशा में पोषण व पानी ज्यादा शोषित करता है। पानी भराव की दशा में ऑक्सीजन न मिलने पर स्पंजी जड़े जल्दी मरती है। अतिरिक्त जल को जल निकास नाली के माध्यम से खेत के बाहर निकाल दें। वर्षा ऋतु में जल निकासी व्यवस्था अच्छी रखें। ऐलोवेरा का पौधा काफी कठोर होता है इसकी पत्तियों एवं जड़ों में जीवाणु एवं विषाणु को नष्ट करने वाले रसायन होते हैं जब पत्ती एवं तना चोट लगने के कारण क्षतिग्रस्त हो जाते हैं तो यह सूक्ष्मजीव इन्हीं घाव के माध्यम से पौधे के अंदर प्रवेश कर जाते हैं एवं नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। रोगों में तना सड़न, जीवाणु सड़न, पत्ती धब्बा मुख्य हैं उपाय के तौर पर जल निकास अच्छा रखें। पत्तियों को चोट न पहुंचाए। ट्रायकोडर्मा पाउडर 25 ग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से खेत में मिलाएं स्वच्छ खेती करे रोपड़ के प्रथम वर्ष 2 तुड़ाई तथा दूसरे वर्ष से 5 वर्ष तक 4 तुड़ाई प्रतिवर्ष करनी पड़ती है। पत्तियाँ का भार लगभग 3 माह से अधिकतम हो जाता है। यदि जल्दी तोड़ लंगे तो वजन कम तथा रसायनों की गुणवत्ता भी अच्छी नहीं मिलेंगी। यदि देर से तुड़ाई करेंगे तो आने वाली फसल देर से आएगी तथा पत्तियों की उपज कम हो जाएगी। पत्तियों को धूप निकलने से पहले अवश्य तोड़ लेना चाहिए नहीं तो रस रिसाव ज्यादा होगा तथा पौधें का घाव देरे में भरेगा। पत्तियां इस प्रकार तोड़े कि किसी भी प्रकार नुकसान न पहुंचे। पत्तियों के बंडल बनाकर बाजार तक ले जाएं। बंडल बनाते समय लंबाई के अनुसार श्रेणीकरण अवश्य करें। इससे भाव अच्छा मिलता है। एक हेक्टेयर में 56000 पौधे लगते है। औसतन 4 तुड़ाई से साल भर में प्रति पौधा 4 किलो पत्ती प्राप्त होती है। यदि एक रुपए प्रति किलो पत्ती बिके तो सवा दो लाख प्रतिवर्ष कुल आय प्राप्त होती है। लेकिन यह देखा गया है कि इ–कॉमर्स के माध्यम से 5 से 10 रुपए प्रति किलो बिक जाती है। उस दिशा में प्रति हेक्टेयर 11 से 22 लाख रुपए कुल आय प्राप्त हो सकती है। बात सिर्फ बाजार तलाशने की है।

जैव विविधताः परिचय, महत्त्व तथा संरक्षण

डॉ0 हेमलता पन्त एवं डॉ0 ज्योति वर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

किसी प्राकृतिक प्रदेश में पायी जाने वाली जंगली तथा पालतू जीव–जन्तुओं एवं पादपों की प्रजातियों की बहुलता को जैव–विविधता कहते हैं। जैव–विविधता शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 'ई0ओ0 विल्सन' ने किया था।

हमारा देश एशिया महाद्वीप में भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। हमारे देश में समस्त प्रकार की जलवायु तथा जीव जन्तु, प्राणियों एवं वनस्पतियों की इतनी प्राचीन एवं अर्वाचीन जातियाँ–प्रजातियाँ उपस्थित है जितनी विश्व के अन्य किसी भी भू–भाग में नहीं दिखाई पड़ती हैं। हमारा देश वन्य जीव की दृष्टि से समृद्धशाली है। वन्य जीव प्रकृति की अमूल्य निधि है। ये पर्यावरण को संतुलन की ओर बढ़ाते है। हमारे देश सघन जैव विविधता की दृष्टि से संसार में अपना विशेष स्थान रखता है। ब्राजील के बाद भारत के सघन वनों में सबसे अधिक जैव विविधता है।

विश्व में लगभग 15,00,000 जीव प्रजातियाँ पायी जाती है, जिसमें 250000 वनस्पति प्रजातियाँ है। संसार के समस्त वनस्पति प्रजाति में से लगभग 44500 प्रजातियाँ भारत में पायी जाती है, जबकि संसार के सभी जन्तु प्रजातियों में से 91212 उभयचर एवं कीट प्रजातियाँ केवल भारत में पायी जाती है। इस प्रकार विश्व के सभी ज्ञात पादप का 17.8% तथा जन्तु प्रजाति का 7.29% भाग भारत में निवास करता है। हमारे देश में लगभग 2100 पक्षी प्रजातियाँ, 500 प्रकार की जैव जातियाँ, व 61151 मत्स्य एवं जीव प्रजातियाँ आदि है। मानव का भौतिकवादी दृष्टिकोण जैव विविधता के मौलिक रुप का विनाश कर रहा है जिससे 133 प्रजातियां दुर्लभ प्रजातियां हो गयी हैं जिनके अस्तित्व पर संकट है।

जैव विविधता का महत्व–

जैव विविधता से खाद्यान्नों की प्राप्ति होती है। जिससे मानव का भरण–पोषण होता है।

संसार में 80000 खाने योग्य पादप जातियाँ हैं जिनमें केवल कुछ की खोज की गयी है। 8 पादप प्रजातियों से मानव आहार का 75 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। इसके साथ–साथ विश्व की 50 प्रतिशत औषधियाँ जैविकीय संसाधनों से प्राप्त होती है। अनेक प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में पशुओं के चर्म एवं हड्डियों का प्रयोग किया जाता है। पर्यटन, मनोरंजन एवं विनिर्माण उद्योगों में किसी न किसी रुप में जैविक संसाधनों का उपयोग किया जाता है। पर्यावरण के अस्तित्व के लिए जैव–विविधता को सुरक्षित रखना बहुत जरूरी है, किसी एक जाति के नष्ट हो जाने से पूरा पारिस्थितिक तंत्र ही बिगड़ जाता है। आज के समय में मनुष्य, जीवों तथा वनस्पतियों को लगातार नष्ट करा रहा है। इस समय लगभग 25000 पादप जातियाँ विलोप के कगार पर पहुंच गयी है। पारिस्थितिकीय दृष्टि से लुप्त तथा जीवन के लिए संघर्ष कर रही जातियों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है:

1. **लुप्त जातियाँ**: डायनासोर, मैमथ, लाल पाण्डा, डोडो, जैन्टमाओं, तस्मानियन भेड़ियां, क्यूबन, लाल तोता, अन्टार्कटिक भेड़िया, रोडरीग्यूज कछुआ, ब्लूबक, रयूकस किंस फिशर आदि जीव जातियाँ या प्रजातियाँ लुप्त हो चुकी हैं। इनमें से डोडो व लाल पाण्डा मानव क्रूरता के कारण खत्म हो गये जबकि अन्य प्राकृतिक कारणों से।
2. **संकट ग्रस्त जातियाँ**: संसार में जीव–जन्तुओं तथा फसलों की अनेक प्रजातियाँ हैं जो पूरी तरह से लुप्त नहीं हुई हैं लेकिन लुप्त होने के बहुत निकट हैं जैसे–अफ्रीकन हाथी, भरतीय चीता, गिद्ध, साही, काली हिरण, बारहसिंगा, देशी मुर्गियाँ, साँवा, कोदो, फाक्सटेल, देशी चावल, जौ, अनेक सब्जियाँ और फल आदि।
3. **संभावित संकटगस्त जातियाँ**: संसार में बहुत सी जीव जातियाँ एवं फसलों की जातियाँ ऐसी हैं जिनके अस्तित्व पर भविष्य में संकट की संभावना है। भैंस, देशी गाय, बकरी, भेड़ एवं बासमती, पुन्नी, आदमचीनी, काला जीरा, क्वारी आदि चावल की जातियाँ, सी–306, के–68, मुडिलवा आदि गेहूँ की जातियाँ, जौनपुरी मक्का, देशी ज्वार, बाजरा आदि कम हो रहे हैं। बैंगन, टमाटर, रामदाना, सेम, कुकरबिट आदि कहीं–कहीं पर दिखाई पड़ रहे हैं। विश्व में 10,000 प्रजातियाँ खाद्य योग्य हैं, जबकि हम अपने 90% पोषण हेतु केवल 30 प्रजातियाँ पर ही निर्भर हैं।
4. **दुर्लभ जातियाँ**: जीव जन्तुओं, फसलों, पेड–पौधों आदि की संख्या लगातार कम हो रही है। ये एक भौगोलिक क्षेत्र में सिमट गयी है। बासमती चावल का उत्पादन केवल उत्तरी भारत तथा पाकिस्तान में किया जाता है। चंदन, पाकड़ तथा देवदार के वृक्ष क्रमशः

कर्नाटक, अण्डमान तथा हिमालयी क्षेत्रों में ही अस्तित्व में है। ओंगी, सौम्पेन, सेन्टिनल तथा जरवा अण्डमान की जनजातियाँ हैं, जिनकी संख्या बहुत कम रह गयी है। कमोडो ड्रेगन नामक छिपकली अब केवल इण्डोनेशिया के एक द्वीप पर पायी जाती है।

भारत में विलुप्त हो रही जीव जन्तुओं की संख्या			
क्रसं.	प्रजातियाँ	विलुप्त हो चुकी	विलुप्त होने का खतरा
1.	पेड़ पौधे	384	19079
2.	मछलिँया	23	343
3.	उभयचर	2	50
4.	सरीसृप	21	170
5.	बिना रीड़ वाले जन्तु	98	1355
6.	पक्षी	113	1037
7.	स्तनधीर	83	497
	कुल	**744**	**22531**

जैव विविधता के क्षरण होने के कारण: जैव विविधता के ह्रास होने का कारण प्राकृतिक प्रक्रिया भी है पर प्रकृति इस ह्रास को समायोजित कर लेती है लेकिन आज के समय में जैव–विविधता का हानि मानवीय हस्तक्षेप के कारण बहुत हो रही है। जनसंख्या की दिनोदिन बढ़ोत्तरी, औद्योगीकरण, कृषि का नवीनीकरण, नगरीकरण जैसे कारक जैव विविधता को बहुत तेजी से क्षति पहुँचा रहे हैं। वन जीवों का अवैध शिकार, उनके आवासों का विनाश व बिखराव, प्रदूषण में बढ़ोत्तरी के साथ–साथ बाहरी प्रजातियाँ का प्रवेश व स्थानान्तरी कृषि भी जैव विविधता को नुकसान पहुँचाने वाले कारण है।

जैव–विवधता का संरक्षण–जैव विविधता के संरक्षण के लिए हमें प्राणि विज्ञान, उद्यानों, वानस्पतिक उद्यानों, बीज बैंकों, पराग एवं बीजाणु बैंकों आदि में देखरेख के अन्तर्गत प्रजनन क्रिया का विकास के साथ–साथ प्रदूषण उत्पन्न करने वाली इकाइयों पर प्रबन्ध लगाना चाहिए। सबसे मुख्य बात पर्यावरणीय अध्ययन व जनमानस में नैतिक बोध एवं कर्तव्य भावना का बहाना बहुत जरूरी है। इसके अलावा विश्व स्तर पर प्रत्येक देश को जैव विविधता संरक्षण कानून बनाना चाहिए।

विधायन कर बीजों की गुणवत्ता बढ़ाये

कौशल कुमार, प्रदीप कुमार एवं विद्यासागर

कृषि विज्ञान केन्द्र पांती, पो0 मंशापुर, अम्बेडकरनगर–224168, (उ.प्र.)

गुणवत्ता युक्त बीज की कमी अथवा अनुपलब्धता कृषि उत्पादन एवं उत्पादकता पर काफी प्रभाव डालता है। यदि बुआई के लिए गुणवत्तायुक्त बीजों का उपयोग नही किया गया हो तो फसल उत्पादन में कुल लागत जैसे तकनीकी ज्ञान, उर्वरकों रसायनों का प्रयोग, सिचाई तथा अन्य सस्य क्रियायें उपयुक्त मात्रा में करने पर भी वांछित उत्पादन नही प्राप्त हो पाता है। इसलिए बीज उत्पादन हेतु फसलों की कटाई के उपरान्त उसका संसाधन एवं भण्डारण अति आवश्यक है।

गुणवत्ता युक्त बीज :

गुणवत्तायुक्त बीज आनुवांशिक रूप से 99.5 प्रतिशत तक शुद्ध होते है। ये बीज भौतिक रूप से भी बीज मानकों के अनुरूप शुद्ध होते है तथा अधिकांश बीजों में भौतिक शुद्धता 98 प्रतिशत होती है। बीज जमाव बीज मानक के न्यूनतम स्तर के बराबर या अधिक होता है। बीज जातिय लक्ष्णों के अनुरूप होते है। जिसके कारण अधिक उपज एवं गुणवत्ता युक्त रहते है। गुणवत्तायुक्त बीज जलवायु की भिन्न्ता के कारण कम से कम प्रभावित होते है।साथ ही साथ इनमें बीमारियों के प्रकोप को कम करने या बचने की क्षमता होती है। इन बीजों में एक रूपता होती है तथा ये मिलावट से मुक्त होते हैं।शेधित हाने के कारण ये बीज कीट एवं बीमारियों से भी मुक्त होते हैं। इन्ही कारणें से ऐसे बीजों की बुआई से उत्पादकता अधिक होती है।

गुणवत्तायुक्त बीजों की शुद्धता के चरणः

गुणवत्तायुक्त बीजों की शुद्धता में बीज को अपने चक्र में तीन–चार अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिसमें अशुद्धता होने की सम्भावना रहती है।

1. खेत में उत्पादन के समय शुद्धता :

इसके लिए समुचित फसल–चक्र अपनाना चाहिए तथा बीज की बुआई करने के पहले फसल की प्रकृति के अनुसार भूमि चयन करना चाहिए । खेत की जुताई मिट्टी पलट हल से एवं तैयारी डिस्क हैरो से करने पर खर–पतवार एवं कीट नियन्त्रण में आसानी हो जाती है। संसोधित

बीजों का प्रयोग,निर्धारित मात्रा में प्रयोग एवं बीज बुआई यन्त्रों से कतारों में निर्धारित दूरी पर बुआई करनी चाहिए । एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति के बीच निर्धारित दूरी रखने चाहिए। संस्तुत उर्वरक प्रयोग समय से सिचाई के साथ अवॉछित एवं रोग ग्रस्त पौधों को समय–समय पर खेत से निकालते रहना चाहिए। खेत को खरपतवार रहित रखना चाहिए। बीज फसल का उचित अवस्थओं पर बीज प्रमाणीकरण संस्था द्वारा खेत निरीक्षण करवाना अति आवश्यक है। उच्च गुणवत्ता वाले सभी फसलों की कटाई पूर्ण परिपक्व अवस्था में साफ मौसम में करनी चाहिए।

2.खलिहान में शुद्धताः

खलिहान खर–पतवार तथा अन्य फसलों के बीजों से मुक्त रहना चाहिए। एक प्रजाति की थ्रेसिंग के बाद दूसरी प्रजाति या फसल की थ्रेसिंग के पूर्व थ्रेसिंग मशीन,कम्बाइन तथा पंखों आदि की पूर्ण रूप से सफाई कर लेनी चाहिए। थ्रसिंग करते समय चोल उचित होनी चाहिए अन्यथा तेज होने पर दानों के टूटने का खतरा है। मड़ाई या थ्रेसिंग के समय बीज में नमी नही होना चाहिए अन्यथा फफूदी से बीज खराब हो जाता है। थ्रेसिंग के समय बीज में नमी का प्रतिशत 11–16 प्रतिशत तक होना चाहिए। थ्रेसिंग के बाद बीज को सुखाकर नई बोरियों में भरना चाहिए।

3. बीज संसाधन एवं भण्डारण में शुद्धता :

1. थ्रेसिंग के बाद क्लीनर से बीज को साफ करके उचित ग्रेडर सें ग्रेडिंग करनी चाहिए सफाई करते समय फसल की प्रजाति के अनुसार जालियों का प्रयोग करना चाहिए। दूसरी प्रजाति की क्लीनिंग ग्रडिंग करने के पूर्व क्लीनिंग एवं ग्रडिंग मशीन की पूरी तरह सफाई कर लेनी चाहिए। थ्रेसिंग फ्लोर तथा दीवारों आदि को अच्छी तरह से सफाई करनी चाहिए। बीज संसाधनशाला में ग्रेडिंग के पूर्व मैलाथियान 50 ई. सी. एक लीटर दवा 25 लीटर पानी अथवा डेल्टामेथ्रिन 30 ई.सी. एक लीटर दवा 100 लीटर पानी में घोल कर फर्श तथा दीवारों पर अच्छी तरह से छिड़काव करना चाहिए। ग्रेडिंग करने से बीज की भंडारण क्षमता में सुधार हो जाता है।
2. बीज ग्रेडिंग करने के बाद बीज का बीज शोधन मशीन से शोधन कर लेना चाहिए।
3. बीज शोधन के बाद बीज को आवश्यकतानुसार बोरियों में पैकिंग कर लेना चाहिए जो पैकेजिंग मशीन से किया है।
4. इसके बाद बोरियों में रखे बीजों को भण्डार गृह में रखने चाहिए भ्ण्डार गृह को भी बीज संसाधनशाला की तरफ साफ करके कीटनाशकों का छिड़काव करना चाहिए। धूमण के लिए

अल्यूमिनियम फास्फाइड की 3 ग्राम गोली को 2–3 गोली प्रति टन बीज के दर से धूमण करना चाहिए। इस समय भण्डार गृह की खिड़कियां तथा दरवाजे से हवा आवागमन नही होना चाहिए।

5. धूमण करते समय बीज में नमी 12 प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए अन्यथा बीज का अंकुरण प्रभावित हो सकता है।
6. भण्डार गृह में बोरियों को लकड़ी अथवा प्लास्टिक के पैकेट रखना चाहिए। पैलेट जमीन से लगभग 9 इंच ऊँचे होना चाहिए। दीवार से बीजों से लाटों को 1.5 फुट की दूरी पर रखना चाहिए ताकि आने–जाने दीवार से नमी का बचाव और धूमण में सुविधा हो सके।
7. भण्डारगृह में 15 दिन के अन्तराल पर बीज का निरीक्षण करते रहें और आवश्यकतानुसार ध्रमण करते रहें।
8. बिक्री के पूर्व बीजों का अंकुरण एवं भौतिक शुद्धता आदि का परीक्षण बीज परीक्षण प्रयोगशाला में करवाना आवश्यक है।
9. बीज थैली/बोरी पर लेबलिंग भी आवश्यक है जिसमें बीज उत्पादक का नाम फसल का नाम, प्रजाति का नाम, बीज की श्रेणी, थोक संख्या अंकुरण प्रतिशत, आनुवांशिक शुद्धता प्रतिशत, भौतिक शुद्धता प्रतिशत बीज का शुद्ध भार, परीक्षण तिथि एवं वैधता की तिथि आदि लिखा होना चाहिए।
10. भण्डारगृह में कटे दाने तथा बिना ग्रेडिंग के बीज साथ रखना चाहिए। एक प्रजाति और फसल का बीज ही एक साथ रखना चाहिए क्यों कि प्रत्येक फसल के बीजों की भण्डारण क्षमता भिन्न होती है।
11. अनाज,दलहन,तिलहन तथा सब्जियों के लिए अलग–अलग भण्डार होना चाहिए।

मूली की वैज्ञानिक खेती

डॉ. मनोज कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, उद्यान विज्ञान विभाग
कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, प्रयागराज, (उ.प्र.)

मूली एक महत्वपूर्ण जड़ वाली सब्जी है। गृहवाटिका में उगाई जाने वाली सब्जियों में महत्वपूर्ण सब्जी है। मूली की खेती सामान्यता पूरे देश में की जाती है। मूली में प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व पाये जाते है। प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट तथा खनिज के साथ–साथ विटामिन ए,बी व सी भी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसको औषध के रूप में बवासीर, पीलिया और जिगर के रोगो में लाभकारी होती है।

मृदा एवं जलवायु–मूली की खेती के लिए बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है लेकिन इसकी खेती सभी प्रकार की भूमिका में की जा सकती है जिसमें जीवांश मुक्त पदार्थ और उचित जलनिकास का प्रबन्ध हो और च॰ 6.7 हो।

भूमि की तैयारी–भूमि की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई करे। इसके पश्चात् 2–3 बार देशी हल या कल्टीवेयर से जुताई करें प्रत्येक जुताई के पश्चात् पारा अवश्य चलाएं ताकि मिट्टी समतल और भूरभुरी हो सके।

उन्नतशील प्रजातियाँ–मूली की दो प्रकार की प्रजातियाँ होती है। यूरोपीयन और एशियायात्रिक काफी लोकप्रिय है। यूरोपियन किस्में आकार में छोटी होती है लेकिन खाने में कम तीखी, चिकनी और स्वादिष्ट होती है। ये शीघ्र तैयार होने वाली एवं ठंडे स्थानों पर उगाने के लिए उपयुक्त होती है। एशियाई किस्में मध्यम से लम्बे आकार की चिकनी, तीखी व ठोस होती है।

यूरोपियन किस्में–

पूसा हिमारी–यह प्रजाति मैदानी और पहाड़ी दोनो क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। मैदानी क्षेत्रो में दिसम्बर से फरवरी तक बोआई करते है व पहाड़ी क्षेत्रों में फरवरी–मार्च में करते है।

- **हवाईट आइसकिल**–यह प्रजाति 30 दिन में तैयार हो जाती है इसकी बोआई का उपयुक्त 15 अक्टूबर से फरवरी तक करते है। जड़े कम तीखी सफेद रंग की होती है।

- **रैपिड रेड हवाईट टिप्ड**–इस किस्म के मूली का छिलके का रंग लाल होता है। जड़े होती आकार की और गुदा सफेद रंग का होता है। यह किस्म 25–30 दिन में तैयार हो जाती है।
- **पूसा रशिम**–इस किस्म की बोआई सितम्बर से नवम्बर तक करते है। यह प्रजाति 50–60 दिन में तैयार हो जाती है।
- **जौनपुरी मूली**–जौनपुरी मूली 45 सेंमी लम्बी और 7–10 सेमी0 मोटी होती है। गूदा सफेद, मुलायम और मीठायुक्त होता है।
- **पूसा चेतकी**–इस प्रजाति को गर्मी और बरसात दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है। मूली की लम्बाई 15–20 सेमी0 लम्बी और 40–45 दिन बाद बाआई के तैयार हो जाती है इसकी बोआई मार्च–सितम्बर तक करते है।

बीज और बोने का समयः–

यूरोपियन जातियाँ की बोवाई के लिए बीज 12 किलोग्राम और एसियाटिक जातियों की 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से लगता है।

मूली की बोवाई यद्यपि वर्ष भर होती है फिर भी मार्च–अगस्त तक पहाड़ी क्षेत्रों में तथा सितम्बर से जनवरी तक मैदानी क्षेत्रों में बोवाई करते है।

बोवाई की विधि तथा बोने का अन्तरण–

मूली की बोआई समान्यता दो तरीके से की जाती हैः

1. **कतार मे बोवाई**–अच्छी प्रकार से तैयार क्यारी में लगभग 30 से0मी0 की दूरी पर कतार (लाइन) बना लेते है और लाइन में 8–10 से0मी0 की दूरी पर 3–4 से0मी0 गहराई पर बोवाई करते है।
2. **मेड़ो पर बोवाई**–क्यारियों में 30 से0मी0 की दूरी पर 15–20 से0मी0 ऊँची मेड़े बना लेना चाहिए। इन मेड़ो पर 4 से0मी0 की गहराई पर बोया जाता हूँ बीज उग जाने पर पौधों में दो पत्तियाँ आ जाये तब पौधों को 8–10 से0मी0 की दूरी छोड़कर बाकी पौधों को निकाल दिया जाता है। इस विधि से बुवाई करने पर जड़ो की अच्छी बढ़वार होती है। और साथ ही साथ मूली मुलायम रहती है।

खाद एवं उर्वरकः–

मूली के भूमि की तैयारी के समय 150–200 क्विंटल प्रति हेक्टर की दर से अच्छी प्रकार से

सड़ी हुई गोबर की खाद तथा 60 किग्रा0 नत्रजन 50 किग्रा0 पोटाश प्रति हेक्टर की दर से उपयुक्त होती है।

सिंचाई एवं जल निकास–बोवाई के समय यदि मृदा में नमी की कमी हो तो बोवाई के तुरन्त हल्की सिंचाई कर दे इसके पश्चात् जब पौधे में 3–4 पत्तियाँ आ जाय तब करें। पौधों की आवश्यकतानुसार व मृदा की किस्म के अनुसार सिंचाई करते रहें। किसी भी दशा में जल जमाव नहीं होना चाहिए।

खुदाई–जब जड़ पूर्ण रूप से विकसित हो जाए लेकिन मुलायम हो तभी खुदाई कर लेनी चाहिए। इस बात का अवश्य ध्यान रखे कि खुदाई के पूर्ण खेत की हल्की सिंचाई कर दे ताकि जड़ से बिना टूटे ही खाते से निकाला जा सके।

उपज–मूली की उपज उसकी किस्म, भूमि, खाद–उर्वरक और प्रबन्धन पर निर्भर करती है। सामान्यता यूरोपियन किस्मों की उपज 100–150 क्विंटल प्रति हेक्टर तथा एशिमाटिक किस्मों की उपज 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टर होती है।

भण्डारण–मूली की जड़ों को सामान्य तापमान पर छाया में 2–4 दिनों तक आसानी से रखा जा सकता है। शीत ऋतु में 4–5 दिन तक रख जा सकता है। शीतग्रह में 0^{0}ब तापमान पर 90–95: आपेक्षिक आर्द्रता पर मूली को लगभग 30–40 दिन तक रखा जा सकता है।

हल्दी की व्यवसायिक खेती एवं फसल सुरक्षा

[1]डॉ. प्रदीप कुमार, [2]डॉ. विघा सागर एवं [3]डॉ. कौशल कुमार मौर्य

[1]वैज्ञानिक फसल सुरक्षा, [2]वैज्ञानिक पशु विज्ञान [3]वैज्ञानिक/प्रोफेसर कृशि अभियंत्रण

कृषि विज्ञान केन्द्र पाँती अम्बेडकर नगर–224168 (उ०प्र०)

हल्दी (करकुमा लोन्गा) जिन्जीब्रेसी परिवार के अन्तर्गत बहुवर्षीय कन्द युक्त एक मसाला फसल है। विश्व में, सर्वाधिक उत्पादन (82%) भारत में होता है तत्पश्चात् चीन (8%), म्याँमार (4%) नाइजीरिया व बंगला देश (क्रमशः 3%) का स्थान है । वर्तमान में भारत, मुख्य हल्दी उत्पादक व निर्यातक राष्ट्र है। हमारे देश में आन्ध्रप्रदेश (61%), तमिलनाडु (17%) उड़ीसा (07%) कर्नाटक व पश्चिम बंगाल (क्रमशः 4%), गुजरात (2%), केरल (01%) तथा अन्य राज्य बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड़, छत्तीसगढ़ आदि (6%) उत्पादन की द्रष्टि से हिस्सेदार हैं। प्राचीन काल से भारत में हल्दी एक महत्वपूर्ण मसाला है। हमारा देश सम्पूर्ण विश्व में अग्रणी है और उत्पादन का 80% उपभोग करता हैं। भोजन को स्वादिष्ट बानाने के अतिरिक्त खून को शुद्व करने एंव त्वचा को ताजा पन बनाये रखने में उपयोगी हैं। अपने अन्तर्निहित गुणों के कारण भारतीय हल्दी को सर्वोत्तम माना जाता हैं। आयुर्वेद की दृष्टि से हल्दी को पेट व यकृत रोगों के नियत्रण में, घावों की ठीक करने में, कास्मेटिक रूप में तथा पाचन में मदद करने के साथ साथ रोग संक्रमण में प्रयोग करते हैं।

जलवायुः गर्म व आर्द्र जलवायु सबसे अच्छी होती हैं। सम्पूर्ण भारत के सम शीतोष्ण जलवायु प्रधान क्षेत्रो में(20–30 डिग्री सेन्टीग्रेट) सफलतापूर्वक उगाते है अर्थात् 100–300 सेमी॰ वार्षिक वर्षा और 1000 मीटर की उचाँई वाले स्थानों पर भी हल्दी की खेती की जाती है। असिचित और सिंचित दोनों परिस्थितियों में हल्दी उत्पादन कर सकते है परन्तु व्यवसायिक खेती के लिये पर्याप्त सिंचाई का संसाधन जरूरी है।

भूमि का चयनः बलुई या दोमट तथा नदियों के कछारों वाली बलुई दोमट सर्वोत्तम होती हैं। पर्याप्त जीवांशयुक्त, भुरभुरी एंवम् उत्तम जल निकास वाली भूमि उपयुक्त होती है। हल्की अम्लीय भूमि में अधिक उपज मिलती है।

खेत की तैयारीः यान्त्रिक विधि के अर्न्तगत ट्रैक्टर द्वारा मिट्टी पलट ढल से गहरी जुताई (क्रमशः

अपना कर) करते है। तथा रोटावेटर कल्टीवेटर से खेत की मिट्टी को भुरभुरा बनाते है। अन्तिम जुताई के पहले 250 कुन्तल गोबर की खाद कम्पोस्ट मिलाते है। तत्पश्चात् रेज्ड वेड प्लान्टर से एक मीटर चौड़ी, 15 सेमी ऊची और आवश्यकतानुसार लम्बी शैया अथवा पट्टियां बनाते है, दो पट्टियों(शैया) के बीच में 30 सेमी रिक्त स्थान कर्षण क्रियाओं (निराई,गुडाई व सिचाई जल निकास नालियां) हेतु छोड़ते है। इस प्रकार उठी हुयी मेढ़ और बनाकर खेत तैयार करते हैं।

बुआई का समयः मई से जून के प्रथम सप्ताह तक अर्थात मानसून वर्षा के पहले बुआई करना लाभप्रद है, अगेती खेती हेतु अप्रैल में बुआई हितकर होती हैं और जिससे उत्पादन में बढोत्तरी सुनिशिचत होती है।

गुणवत्ता युक्त बीज का चयनः 20–25 कुन्टल स्वस्थ व कीट–रोग अवरोधी सुगठित गाठें प्रति हेक्टेयर चाहिए। प्रति गाँठ 20 से 25 ग्राम वजन और 2 से 3 विकसित आँखे होनी चाहिए।

प्रजातियांः स्थानीय–पडरौना, बस्ती, बरूआ सागर आदि ।

सारणी 1: हल्दी की उन्नत प्रजातियाँ एवं विशेषताएँ

क्रम सं	प्रजाति	उद्भव	उपज टन (ताजा कन्द)	फसल अवधि (दिन)	सूखी हल्दी (:)	कुरकुमिन(:)	ओलेओरेजिन (:)	आवष्यक तेल (:)
1	स्वर्णा	केरल	17.4	200	20.0	4.3	13.5	7.0
2	सुगना	,,	29.3	190	12	7.3	13.5	6.8
3	सुदर्शन	,,	28.8	190	12	7.5	15.0	7.0
4	सुप्रीम	,,	35.4	210	19.3	6.0	16.0	4.0
5	ग्प्रभा	भा मसाला अनु० सं० कालीकट,केरल	37.5	195	19.5	6.5	15.0	6.5
6	प्रतिभा	,,	29.1	188	6.2	6.5	16.2	6.2
7	केदराम	,,	34.5	210	18.9	5.5	13.6	3.0
8	सीओ 1	तमिलनाडू	30.0	285	20.5	4.2	4.0	3.7
9	कृष्णा	,,	9.2	240	16.4	2.8	3.8	2.0
10	वीएसआर 2	महाराष्ट्र	30.7	285	20.5	4.2	4.0	3.7
11	सुगन्धम	गुजरात	15.0	210	23.5	3.1	11.0	2.7
12	रोमा	मसाला अनु. केन्द्र,कोरापुट,उड़ीसा	20.7	250	31.0	9.3	13.2	4.2
13	सुरोमा	,,	20.0	255	26.0	9.3	13.1	4.4
14	रंगा	,,	29.0	250	24.8	6.3	13.5	4.4
15	रश्मि	,,	31.3	240	23.0	6.4	13.4	4.4
16	राजेन्द्र सोनिया	राजेन्द्र कृषि वि.वि. पूसा,विहार	42.0	210	18.0	8.4		5.0
17	नरेन्द्र हल्दी1,2,3,4	नरेन्द्र देव कृषि वि.वि. कुमारगंज अयोध्या उत्तर प्रदेष						
18	पन्त पीताभ	गो.व.प. कृषि एवम् प्रो.वि.वि. पन्तनगर	29.0		18.5	7.5	1.0	1.0

बीज शोधनः हल्दी कन्दो को बुआई के एक दिन पहले कार्बेण्डाजिम 0.15 प्रतिशत, मैन्कोजेब 0.25 प्रतिशत तथा इमिडाक्लोप्रिड 0.05 प्रतिशत में 30 मिनट तक डुबों कर रखते है तत्पश्चात छायादार स्थान में रखकर शोधन करते है।जैविक विधि में ट्राईकोडर्मा विरडी 10 ग्राम प्रति किग्रा,स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स 10 ग्राम प्रति किग्राः तथा व्युवेरिया बेसियाना 10 ग्राम प्रति किग्रा अथवा मेटाराईजि एम एनीसोप्ली 10 ग्राम प्रति किग्रा बीज दर से लेपन करके शीध्र बुआई करना चाहिए। अच्छी उपज के लिये जैव उर्वरक ऐजोस्पारिलम 10 ग्राम प्रति किग्रा नत्रजन स्थिरीकरण हेतु तथा पी एस वी कल्चर 10 ग्राम प्रति किग्रा द्वारा कन्द शोधन करना चाहिए, बीज शोधन प्रक्रिया में फफूँदीनाशी, कीटनाशी तथा जैव उर्वरक का क्रमशः लेपन 10 प्रतिशत गुण घोल के साथ छायादार स्थान पर अलग अलग चार घण्टे अन्तराल के अनुसार करते है।

बीज बुआई का तरीकाः सामान्यतः उठी हुयी मेढ़(शैया) पर 50 सेमी पक्तियों की दूरी तथा 25 सेमी पौधों की दूरी निर्घारण करके शोधित कन्दों की बुआई 10 से 12 सेमी गहराई पर करते है। 50 से 60 कुन्टल गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर की दर तत्पश्चात् बोई गयी गाठों पर डालते है और 2 से 3 सेमी मोटी सूखी घास अथवा पुआल आवरण की पर्त (मल्चिंग) करके हल्की सिंचाई करते है।

मृदा आच्छादन (मल्चिंग): हल्दी की फसल में तीन बार मल्चिंग की जाती है। हल्दी कन्द बुआई के तुरन्त बाद 40 से 50 कुन्टल प्रति हेक्टेयर के दर से सूखी घास, पत्तियाँ, पुआल से करते है पुनः दूसरी व तीसरी मल्चिंग 45 व 90 दिन फसल अवस्था पर 20 से 25 कुन्टल उपरोक्त मल्चिंग सामाग्री से करते है। मल्चिंग से बीज अंकुरण अधिक होता है क्योकि नमी संरक्षण के साथ गर्मी से रक्षा होती है, खरपतवार कम उगते है और भूमि में उपलब्ध उर्वरको द्वारा फसल–पोषण सुनिश्चित होते है।

खाद व उर्वरक प्रयोगः गोबर की खाद 150 से 200 कुन्टल प्रति हेक्टेयर की दर से अन्तिम जुताई के समय भूमि में मिलाते है। साथ ही, आघारीय व टॉप ड्रेसिंग मे उर्वरक 60 किग्रा नत्रजन, 50 किग्रा फास्फोरस तथा 120 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर प्रयोग करते है। बुआई के समय पूरा फास्फोरस व आधा पोटाश की मात्रा प्रयोग करते है। बुआई के 45 दिन बाद और 90 दिन बाद दो बार में नत्रजन व पोटाश क्रमशः प्रयोग करते हैं।

सारणी 2: हल्दी की फसल में खाद व उर्वरक प्रयोग

क्रमांक	खाद व उर्वरक प्रयोग विधि	कम्पोस्ट खाद	नाइट्रोजन	फास्फोरस	पोटाश
1	आधारीय प्रयोग	300 से 400 कु. अथवा 150 से 200 कु गोबर की खाद	–	50 किग्रा	60 किग्रा
2	45 दिन फसल अवस्था पर प्रयोग	–	30 किग्रा	–	–
3	90 दिन फसल अवस्था पर प्रयोग	–	30 किग्रा	–	60 किग्रा

साथ ही, महुआ अथवा नीम की खली 10 कुन्टल प्रति हेक्टयर तथा जिंक सल्फेट 20 से 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर आधारीय प्रयोग से अधिक उपज प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त अधिक उपज के लिये हड्डी का चूरा 10 कुन्टल प्रति हेक्टयर एंव मैन्कोजेब 2.5 किग्रा अथवा रिडोमिल 2 किग्रा प्रति हेक्टेयर भूमि में मिलाना लाभप्रद होता है।

सिंचाई प्रबन्धः बुआई के तुरन्त बाद हल्की व नियन्त्रित सिंचाई करते है और मानसून वर्षा शुरू होने तक आवश्यकतानुसार सिंचाई करना चाहिए। वर्षा के दौरान समान्यतः सिंचाई की जरूरत नही होती परन्तु वर्षा उपरान्त सितम्बर से दिसम्बर के दौरान तीन चार सिंचाइया चाहिए जो भूमि की प्रकृति और मौसम के अनुसार नमी प्रबन्धन प्रक्रिया है।

खरपतवार प्रबन्धः फसलों के प्राराम्भिक दो माह तक हल्दी की फसल में खरपतवार नही पनपने देना चाहिए। प्रथम गुडाई बुआई के 60 दिन पश्चात दूसरी गुडाई 90 दिन पश्चात, तीसरी गुडाई 120 दिन पश्चात करके जड़ो पर मिट्टी चढ़ा देना चाहिए। गुडाई करने से पौधों की जड़ो के आसपास पर्याप्त वायु संचार व नमी संरक्षण सुनिश्चित होते है।

सह फसलः आम, अमरूद, कटहल,आँवला, पपीता, लीची, नीबू, के बागों में हल्दी की खेती की जा सकती है।

मिश्रित खेतीः हल्दी की दो पंक्तियों के बीच मक्का, अरहर, सूरजमुखी, गेदा, मिर्च, अरबी, प्याज आदि उगा सकते है। मिश्रित खेती में मृदा आच्छादन(मल्चिंग) नही की जाती है।

फसल सुरक्षाः हल्दी की फसल में अनेक रोग व कीट हानि पहुचाते है।

(अ) प्रमुख रोगः पौधो के स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले हल्दी के प्रमुख रोग निम्नवत् हैः

1 पत्ती मुँहासा रोग(लीफ ब्लाँच = टफरीना मैकुलेन्स फफूँद) हल्दी की पत्तियों में दोनो सतहो पर छोटे,छोटे अण्डाकार, अष्टभुजाकार अथवा नियमित आकार के कत्थई धब्बे बनते है जो बाद में धूसर पीला या गहरा कत्थई हो जाते हैं। फलस्वरूप पत्तियों में पीलापन भी आ जाता हैं। रोग तीव्र होने पर प्रभावित पत्तियां सूखी नजर आती है जिससे कन्द उपज घट जाती हैं।

उपचारः रोग के प्रारम्भ होने पर मैकोजेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2.5 ग्राम प्रति लीटर(0.25 प्रतिशत घोल) का छिडकाव करें। तथा रिडोमील 72 प्रतिशत धूल चूर्ण 2 ग्राम प्रति लीटर पानी (0. 20 प्रतिशत घोल) का दूसरा छिडकाव करें। प्रत्येक छिडकाव में 10 से 15 दिन अन्तराल रखे।

2. पत्ती धब्बा रोग (लीफ स्पॉट = कोलेटोट्राईकम कैपसेकाई फफूँद): पत्तियों की उपरी सतह पर अनियमित आकार के कत्थई धब्बे बनते है जो बीच में सफेद या घूसर रंग के होते है बाद में रोग प्रसार होने पर धब्बे आपस में मिलकर सम्पूर्ण पत्ती पर फैल जाते है। अन्त मे रोगी पत्तियां सूख जाती है और जड़ो में कन्द नहीं विकसित हो पाते है।

उपचारः कापर आक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत धूल चूर्ण 3 ग्राम प्रति लीटर पानी (0.30 प्रतिशत घोल) अथवा जिनेब 75 प्रतिशत धूल चूर्ण अथवा बोरडो मिश्रण 1 प्रतिशत का छिड़काव 10 से 15 दिन अन्तराल पर करना लाभप्रद होता है।

3. कन्द सड़न (राइजोम राँट=पिथियम ऐफैनीडरमेटम फफूँद): यह रोग संक्रमित बीज या भूमि में जल भराव के कारण होता है। पोधे का आभासी तना एवं भूमि के आसपास वाला भाग मुलायम व जलाशक्ति हो जाता है फलरूवरूप पौधा सूख जाता है और कन्द सड़ जाते हैं।

उपचारः बुआई के पहले कन्दों का शोधन कार्बेण्डाजिम 50 धू. चूर्ण अथवा कैप्टान 70 प्रतिशत धू. चूर्ण 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से 30 मिनट तक डूबों कर छाया में सुखाते है। खड़ी फसल में उपरोक्त घोल को पौधों के जड़ क्षेत्र में डालना(ड्रेन्चिंग) बेहतर होता है।

4. जड़ ग्रन्थि सूत्रकृमि रोग (रूटनॉट निमेटोड मिलोइडोगाइन प्रजाति): पौधों की जड़ो में ग्रन्थि बन जाती है जिनमें सूत्रकृमि के बच्चे व प्रौढ़ रोगी पौधों की जड़ों में रहकर भोजन ग्रहण करते है फलस्वरूप पौधे कमजोर व कम वृद्वि युक्त होते है जिनमें कन्द बनना रूक जाता है।

5. सुरंग बानाने वाला सूत्रकृमि रोग (बरोयिंग निमेटोड राडोफोलस सिमिलिस): पौधों की जड़ो के आसपास विकसित कन्दों में सुरग बनाकर रहते हैं। फलस्वरूप रोगी कन्द खराब हो जाते हैं।

6. जड़ घाव सूत्रकमि रोग (रूट लीजन निमेटोड, प्राटाइलेन्कस प्रजाति): पौधों की जड़ में सूत्रकृमि घाव करते है परिणाम स्वरूप पौधों की बढवार रूक जाती है।

उपचारः फोरेट 10 जी 15 किग्रा अथवा कार्बोफ्यूरान 3 जी 25 किग्रा कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी 25 किग्रा अथवा रीजेन्ट 0.3 जी 25 किग्रा प्रति हेक्टयर की दर से भूमि में प्रयोग(ड्रेचिंग) करने से सूत्रकृमि बचाव सुनिश्चित होता है।

ब प्रमुख कीटः पौधों के स्वास्थय को प्रभावित करने वाले कीट निम्नवत हैः

1 तना बेधक (कोनोगोथेस पंक्टीफेरालिस)ः कीट की सूडी हानिकारक होती है। जो आभासी तना मे छेद करके अन्दर धुस जाती है और आन्तरिक ऊतक खाती है। कीट की विष्ठा व प्रभावित आभासी तना में छेद कीट आक्रमण दर्शाता है। पूर्ण विकसित सूडी हल्के भूरे रंग की रोयेदार होती है। प्रौढ पतंगा के पंख 2 सेमी लम्बे तथा नारंगी पीले रंग के होते है जिन पर काले महीन धब्बे पाये जाते है।

प्रबन्धः वर्षा ऋतु में (जुलाई–अक्टूबर के दौरान) गोभ सूखने पर मैलाथियान 50 ई सी 2 मिली प्रति लीटर पानी अथवा डाइक्लोरवॉस 76 ई सी 1 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। इमैमैक्टिन बेन्जोऐट 5 एस जी एक ग्राम प्रति लीटर पानी में धोल कर छिड़काव अधिक कारगर है।

2. कन्द स्केलकीट(एस्पीडियेल्ला हॉरटाई)ः फसल की अन्तिम अवस्था पर खेत में विकसित कन्द अथवा भण्डारण में कीट के प्रौढ कन्द के ऊपर छिलका (पपड़ी) बनते समय रस चूसते है फलस्वरूप कन्द सिकुड़ जाते है और जमाव प्रभावित हो जाता है।

प्रबन्धः इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ई सी एक मिली प्रति लीटर अथवा साइपरमेथ्रिन 5 ई सी + क्लोरपाइरीपास 20 ई सी मिश्रण 2 मिली प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर कन्दों पर छिड़काव करें।

3. पत्ती खाने वाला वीटल कीटः कीट की सूडियाँ व प्रौढ पत्तियों को खाती है।

प्रबन्धः मैलाथियान 50 ई सी 2 मिली लीटर प्रति (0.2) घोल का छिड़काव करें। दूसरा छिड़काव डाइक्लोरवॉस 76 ई सी 1 मिली प्रति लीटर पानी का छिड़काव 10 दिन अन्तराल पर करना चाहिए।

4 रस चूसक थ्रिप्सकीट (पंक्केटोथ्रिप्स इंडीकस)ः कीट के बच्चे व प्रौढ पत्तियों से रस चूसते हैं जिससे प्रभावित पौधे पीलापन लिये हुए प्रदर्शित होते है।

प्रबंधः डाइमेथोएट 30 ई सी 1 मिली प्रति लीटर पानी से तैयार धोल का अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17.8 ई सी 1 मिली प्रति लीटर पानी से छिड़काव करें।

हल्दी कन्दो की खुदाईः हल्दी की फसल 7 से 9 माह अर्थात (210–270 दिन) में तैयार हो जाती हैं। प्रायः परिपक्व पौधों की पत्तियाँ व तना धीरे– धीरे सूख जाते है तो फरवरी मार्च में खुदाई करना चाहिए। इसके लिये डिगर मशीन द्वारा कन्द व फसल अवशेष अलग करते है। कन्दो से मिट्टी को

अलग करते है और साफ व स्वस्थ कन्द प्राप्त होते हैं।

उपज: साधारणतः 250 से 300 कुन्टल कच्ची हल्दी प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है परन्तु उत्पादन की उन्न्त प्रौघोगिकी अपनाने एवम फसल सुरक्षा उपायों के सदोपयोग से 300 से 350 कुन्टल तक उपज प्राप्त हो जाती है। राजेन्द्र सोनिया प्रजाति की उत्पादन क्षमता सर्वाधिक है और 400 कुन्टल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त हो जाती है।

हल्दी पकाना (प्रसंस्करण): सर्वप्रथम कच्ची हल्दी कन्दो में उपलब्ध अंगुलिकाओं को मातृ– कन्द से तोड़कर अलग किया जाता है मातृ कन्द को बीज हेतु सुरक्षित भण्डारण करते है जबकि बड़े आकार वाली गाठों व अगुलिकाओं को गर्म पानी में 45 से 60 मिनट तक उबालते है अच्छा रंग लाने के लिये उबालते समय प्रति किग्रा कच्ची हल्दी की दर से 1 ग्राम चूना या खाने वाला सोडा डालकर उबालते है जिससे सफेद झाग और विशेष गंध आती है। इसके बाद उबाले गये टुकड़ो को स्वच्छ फर्श या चादर पर धूप में 10 से 15 दिनों तक सुखाते है और निगरानी रखते है।

कन्द से छाल उतारना : हल्दी कन्दों को खुरदरे फर्श या जूट के बोरों पर अच्छी तरह रगड़कर साफ और चमकीला बनाते है। सूखी हल्दी को छोटे मध्यम व बड़े आकारों में छाटाई करके श्रेणी करण करते है।सामान्यतः कच्चे हल्दी का एक तिहाई भाग प्रसंस्कृत हल्दी होती हैं।

कन्द सुखाना: बाँस की चटाई या सूखे खुरदरे फर्श पर उबाली गयी हल्दी की अंगुलिकाओं एंव गाठों को प्राकृतिक रूप से प्रचण्ड़ सूर्य के ताप में 5 से 7 सेमी मोटी तह में रखकर सुखाना चाहिए। पतली पर्त रखने से अच्छा रंग पनपता है और मोटी पर्त होने से रंग खराब हो जाता हैं। रात्रि के समय कन्दो को एकत्र करके जूट के बोरे या अखबार से ढक देना उचित होता है ताकि कन्दो में पर्याप्त वायुसंचार बना रहे, सूर्य ताप में सुखाये गये कन्दो को ब्लैच किया जाता हैं। उबाले गये कन्दो को कृत्रिम रूप से सुखाने के लिये 50 से 60 डिग्री सेन्टीग्रेट पर गर्म तापयुक्त भट्ठी (हौंट एयर ओवेन) में रखते हैं। इस विधि में हल्दी का वास्ताविक रंग सुरक्षित रहता है परन्तु यह खर्चीली प्रक्रिया है।

सूखी हल्दी पर रंग करना(पालिश): सूखी हुयी हल्दी बाहर से देखने पर बदरंग और खुरदरी होती है तथा जड़ के टुकड़े भी होते है। हाथ से या मशीन द्वारा सूखी हल्दी को चिकना करते है और बाहरी त्वचा पर सूखे हल्दी चूर्ण की पालिश करते हैं। इस प्रक्रिया में यान्त्रिक ड्रम का प्रयोग करते है तथा पालिश की गयी हल्दी की हल्दी की मात्रा कच्ची हल्दी की तुलना में 25 प्रतिशत ही होती है। इस प्रकार रंग करने से चमक बढ जाती है और मूल्य सम्वइन सुनिश्चित होता है। हल्दी चूर्ण को

थोडे पानी के साथ छिड़काव करके सूखी हल्दी पर रंग(पालिश) किया जाना हितकर होता है जिससे बजार में अच्छा मुल्य प्राप्त होता हैं।

सूखी हल्दी का श्रेणी करण व विपणन तथा भण्डारणः प्रसंस्कृत सूखी हल्दी को छोटे,मध्यम व बड़े आकार में छटाई करते है और श्रेणी करण करते है। विभिन्न मानक स्तर की सूखी हल्दी को बाजार में भेज कर अच्छा मूल्य प्राप्त करते है। गैर बिक्री हल्दी को जूट के बोरें में भण्डारित करके सूखें व ठण्डें स्थान पर रखते हैं।

बीज प्रकन्दो का भण्डारणः हल्दी के बीज प्रकन्दों को पत्तियों सहित ढक कर वायुयुक्त कमरों में भण्डारण करते है अथवा किसी सुरक्षित स्थान पर जमीन में एक मीटर चौड़ा, 30 सेमी गहरा व आवश्यकतानुसार लम्बा गड्ढा खोदते है। गड्ढा को गोबर से अच्छी तरह लीप देते हैं। और दो तीन दिनों तक सुखाते है। भण्डारण के एक दिन पहले फफूँद संक्रमण से बचाव हेतु कार्बेण्डजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2 ग्राम किग्रा बीज दर तथा कीट आक्रमण से बचाव हेतु क्वीनालफॉस 30 ई सी एक मिली किग्रा बीज दर से छिड़काव करके भण्डारण करते हैं। कहीं कहीं स्थानों पर गड्ढा में बीज प्रकन्द(गाठ) के भण्डारण हेतु लकड़ी का बुरादा,बालू और नीम का रन्ज की पत्तियों को उपयोग में लाते है और लकड़ी के तख्तों से ढक देते है ध्यान रहे कि हल्दी कन्दों के बीच में पर्याप्त वायु संचार रखना जरूरी होता है।

इस प्रकार उत्तर प्रदेश में बढ़ते नीगायों व छुट्टा साडों के आक्रमण से भूमि में अन्दर उगाई जा सकने वाली फसल हल्दी के उत्पादन व प्रसंस्कृत उत्पादों से अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभ है। वर्तमान में हल्दी की धरेलू व निर्यात सम्भावनाए बेहतर है।

फसल सुरक्षा में छिड़काव की उपयोगिता व कार्यप्रणाली

कौशल कुमार मौर्य, प्रदीप कुमार एवं रामजीत

कृषि विज्ञान केन्द्र, पांती पो0–मंशापुर, अम्बेडकरनगर–224168, (उ.प्र.)

फसलों को हानिकारक कीट, रोग–व्याधि तथा अवांछित व आपत्ति जनक खरपतवारों से बचाव के लिए विभिन्न प्रकार के कृषि रक्षा रसायनों का छिडकाव हेतु जो यन्त्र प्रयोग में लाये जाते है। इनकों छिड़काव यन्त्र स्प्रेयर कहते हैं। इस छिड़काव यन्त्र का मुख्य कार्य कृषि रक्षा रसायनों,जल विलेय उर्वरकों, वृद्धि नियाम कों व अन्य उपयोगी द्रव रसायनों कों ऐसी छोटी–छोटी बूदों अथवा फुीहार के रूप में पौधो फसलों तथा वृक्षों पर छिड़कना है। जिससे आवश्यकता के अनुसार ही फसल पर निर्धारित घोल का छिड़काव सुनिश्चित हो सके। पूर्वांचल में प्रायः मानव चालित छिड़काव को यथोचित कार्य प्रणाली एवं समय पर करने के लिए उपयुक्त होते हैं। फसल सुरक्षा में प्रयुक्त जीवनाशी रसायन व फसल पोषण में प्रयुक्त पोषण तत्व रसायन का तकनीकी ज्ञानार्जन एक आवश्यक प्रकिया है। अतः छिड़काव यन्त्र की कार्यगुणक्ता बूॅदों के आकार व फसल आच्छादन की प्रकृति के साथ ही कार्य उद्देश्य से जुडा तथ्य है। इसलिए छिड़काव यन्त्र प्रयोग से फसल पोषण व नाशीजीव सुरक्षा सम्बन्धी तकनीकी ज्ञान से उत्तरोत्तर कृषि उत्पादन सम्भव है।

1. नैप सैक स्प्रेयरः

इस पीठ वाही स्प्रेयर भी कहते है। चलाने वाला व्यक्ति इसको दो बेल्टों की सहायता से पीठ पर लाद लेता है जिससे पानी में उपयुक्त मात्रा में रसायन मिलता रहता है। इसका प्रयोग सब्जी और अन्य फसलों में आवश्यकतानुसार किया जाता है। संचालन के समय घोल पहले स्टोक बार में एक वाल्ब के द्धारा पम्प चैम्बर में प्रवेश करता है जैसे ही लीवर को वापस लाया जाता हैं पम्प चैम्बर में भेज देता है। दाब चैम्बर के अन्दर दबी हवा के माध्याम से यह होज पाइप से होता हुआ नोजेल तक पहुचकर छिड़काव कर देता है।

2. राकिंग स्प्रेयरः

यह दाब चैम्बर से अधिक दाब 14–18 कि0 ग्रा0 प्रति वर्ग सेमी0 तक बना देता है। इसलिए इसका प्रयोग बड़ी फसलो विशेषकर 5–6 मीटर तक उचाई वाले वृक्षों में भी किया जा सकता है।

3. पैर चालित स्प्रेयर :

इसमें प्लन्जर समूह होता है जौ पैर द्धारा चलाया जाता है। यह चलाने में आसान होता है और इसका प्रयोग सब्जियों बड़ी फसलों तथा वृक्षों पर छिड़काव हेतु किया जाता है।

4. हस्त दाब युक्त स्प्रेयर :

इसमें 0.5 से 3.0 लीटर क्षमता का टैंक होता है। जो प्लन्जर टाइप पम्प से 01 कि0 ग्रा0 प्रति वर्ग से0 मी0 तक का दाब पैदा कर देता है। इसका प्रयोग छोटे क्षेत्रफल के लिए किया जाता है।

5. दाब युक्त नैप–सैक स्प्रेयर :

इस प्रकार के स्प्रेयर में पम्प करके दाब उत्पन्न किया जाता है। इसमें धीरे–धीरे घटता है और बूदों का आकार बढ़ जाता है,जबकि टैंक की क्षमता 10 से 20 लीटर तक होता है। इसलिए चालक को विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।दाब कम होने पर वाछित दाब उत्पन्न करना आवश्यक होता है।इस प्रकार के स्प्रेयर में औसत दाब 2–3 कि0 ग्रा0 प्रति वर्ग से0मी0 का होना आवश्यक है। इसमें लगभग 55 पूरा स्टोक से हवा का दाब पैदा करने पर लगभग 04 कि0 ग्रा0 प्रति वर्ग से0मी0 का दाब उत्पन्न होता है जब टंकी का तीन चौथाई भाग घोल से भरा हो।

छिड़काव यन्त्र का अशांकनः

खेत में छिड़काव शुरू करने से पहले सभी प्रकार के छिड़काव यन्त्रों को अशांकित कर लेना चाहिए। यह निर्धारित करने के लिए इसकी जांच कर लेनी चाहिए कि क्या वे अभीष्ट दर पर छिड़काव सामग्री दे रहे है? अनुप्रयोग की दर का निर्धारण नाजेल के निष्सरण दर और यन्त्र की खेत में चाल से किया जाता है। यदि छिड़काव यन्त्र के नाजेल अभीष्ट आकार के है और यह ठीक दाब पर कार्य कर रहा हो तो जांच करने का मुख्य प्रयोजन चाल की उचित दर तय करना होता है। छिड़काव यन्त्र की टंकी को अशांकित करने में निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जाता हैः–

1. दो खूँटियॉ 200 मी0 की दूरी पर लगाना चाहिए।
2. छिड़काव यन्त्र की टंकी में पानी भरा जाए। अब इसको चलाया जाए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि टंकी का अंकन करने से पहले रोधी वाल्ब तक का सारा प्रदायी मार्ग पूरा हुआ ।
3. छिड़काव यन्त्र को दोनों खूँटियों के बीच में अभीश्ट चाल से एक ओर से दूसरी ओर चलाना चाहिए। इस दौरान उसको पूर्व प्रचालन खूटी से गुजरे, तब उसको उच्च दाब पर सामान्य

चाल से चलना चाहिए और वाल्ब खुला रहना चाहिए।

4. जांच करने के बाद टंकी को दोबारा भरने के लिए जल की आवश्यक मात्रा को सावधानी पूर्वक नापना चाहिए। टंकी को मापन पटरी के समान चिन्ह तक पुनः भरना चाहिए। इस प्रकार दो–तीन बार के अभ्यास से यह निश्चय कर लेना चाहिए कि छिड़काव यन्त्र से वांछित क्षेत्रफल से निर्धारित घोल का छिड़काव हो रहा है।इस प्रकार स्प्रेयर फसल पर छिड़काव करने के लिए अभीष्ट दर पर आ चुका होता है, फिर शेश सम्पूर्ण फसल पर भी अभीष्ट चाल से छिड़काव करना चाहिए।

छिड़काव यन्त्रों का रख–रखावः

1. प्रतिदिन का काम समाप्त होने पर छिड़काव यन्त्र में साफ पानी चलाना चाहिए ताकि पूरी मशीन भीतर से साफ हो जाए।
2. चालनी और अलग से होने वाले यन्त्र समूह को अलग करके तथा साफ करके पुनः यथास्थान लगा देना चाहिए।
3. आवश्यक घिसाई से बचने के लिए छिड़काव यन्त्र और इसके हिस्सों में धूल एवं तलछट नही जाना चाहिए। इसके लिए उसमें छनी हुई छिड़काव सामग्री भरना चाहिए।
4. चमड़े डोरी के वाशर में तेल डालना चाहिए तथा इसके घिस जाने पर बदल देना चाहिए।
5. नैप सैक स्प्रेयर के पम्प में पी0वी0सी0 पिस्टन का प्रयोग होता है,जिससे घिस जाने पर इसे बदल देना चाहिए।
6. बोर्डो मिक्चर व तांबा युक्त कवकनाशियों के प्रयोग की स्थिति में सारे हिस्सों को अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिए।
7. टंकी में छिड़काव करने का रसायन रात भरकर नही रखना चाहिए।
8. हस्त दाब/संपीडन छिड़काव यन्त्र को उसकी क्षमता के 2/3 भाग से अधिक नही भरना चाहिए।
9. सारे गतिशील हिस्सों में तेल डाल देना चाहिए।
10. प्रदायी नलिका को जोड़ो को रिसना नही चाहिए यदि वाशर या क्लैम्प घिस गये हो तो उन्हें बदल देना चाहिए।
11. मज्जक छड़ यदि मुड़ गई हो तो उसे सीधा करके दोबारा लगा देना चाहिए।

ग्रीष्मकालीन सब्जियों की खेती से लाभ

डॉ0 हेमलता पन्त एवम् डॉ0 डी. के. श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक, जन्तु विज्ञान विभाग, सी0एम0पी कालेज , प्रयागराज
एवं संयुक्त निदेशक, (कृषि), उ.प्र. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी परिषद, लखनऊ (उ.प्र.)

ग्रीष्म ऋतु की प्रमुख सब्जी कद्दु वर्गीय (कुकुरबिटेसी) कुल की होती है जैसे –कद्दू, लौकी, करेला, तरबूज, खरबूजा, नेनुआ, ककड़ी और भिण्डी इत्यादि है। ग्रीष्म ऋतु की सब्जियों को वैज्ञानिक रूप से खेती किया जाये तो इससे अत्यधिक लाभ कमाया जा सकता है क्योंकि ग्रीष्म कालीन की सब्जियाँ कम समय में तैयार हो जाती है । गर्मी के कारण कीड़े–मकोड़े और रोग कम लगते है। परिणाम स्वरूप किसान भाई प्रति इकाई अधिक आर्थिक लाभ होता है।

ग्रीष्म कालीन सब्जियाँ जल्दी तैयार हो जाती है। ग्रीष्म ऋतु में कोई वाणिज्यिक फसल यानि गेहूँ, धान, चना, सरसो, गन्ना व आलू नही उगाया जा सकता है। लगभग किसान भाई का खेत खाली ही रहता है। जिस पर कद्दू वर्गीय सब्जियाँ जैसे खरबूज, तरबूज की तुड़ाई पर विशष ध्यान दें, इन्हें पूरी तरीके से पकने पर ही तुड़ाई करें नहीं हो कच्चा की अवस्था में तुड़ाई करने पर मीठा न होने की दशा में बाजार भाव नहीं मिलता है और हानि उठानी पड़ती है। खरबूज की तुड़ाई का उपयुक्त समय डण्ठल और फल के बीच फल व डण्ठल के लगान बिन्दु पर पतला–पतला फटने लगे तब तुड़ाई करे और तरबूज को हाथ में मारने पर ढब–ढब की आवाज करे और जमीन की तरफ वाला फल का भाग पीला होने लगे तो पक गया समझिये, तब तुड़ाई करें और भरपूर लाभ ले। अन्य कद्दू वर्गीय सब्जियों की सही समय पर तुड़ाई करें क्योंकि कड़ी होने पर बाजार मूल्य प्रभावित हो जाता है। ग्रीष्म कालीन सब्जियाँ कम समय में यानि 3–4 महीने में ही तैयार हो जाती है और साथ ही साथ उत्पादन अधिक प्राप्त होता है परिणाम स्वरूप प्रति इकाई अन्य फसलों की अपेक्षा किसान भाई को अधिक लाभ प्राप्त होता है।

- ग्रीष्म कालीन सब्जियों में अन्य ऋतुओं की फसलों की तुलना में कीड़े–मकोड़े और रोग कम लगते है, क्योंकि अधिक तापमान होने के कारण फफूँद, कीड़े–मकोड़े आदि का प्रकोप नहीं होता है। जिससे उत्पादन लागत कम आती है साथ ही साथ सब्जियों की गुणवत्ता बनी रहती है।

वर्षा कालीन और शरद कालीन सब्जियों में खरपतवार का प्रकोप अधिक होता है। जबकि ग्रीष्म कालीन को सब्जियों में खरपतवार कम लगने से खरपतवार नियन्त्रण के खर्च से बचत हो जाती है।

ग्रीष्म कालीन में किसी अन्य प्रकार की वाणिज्यिक फसलों को नही उगाया जाता है जैसे– आलू, धान, सरसो, आलू इत्यादि को नहीं उगाया जा सकता है। इस समय लगभग खेत खाली रहता है और सब्जी उगाकर अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

ग्रीष्म कालीन सब्जी उत्पादन में समय कम लगता है यानि इस ऋतु की सब्जी 3–4 महीने में तैयार हो जाती है। अन्य फसलों की अपेक्षा लागत कम होती है। लाभ लगभग सुनिश्चित होता है। हारमोन्स का प्रयोग करके अधिक उत्पादन गुणवत्ता युक्त प्राप्त कर लाभ कमाया जा सकता है। किसान को 90–95 दिन के बाद आमदनी प्राप्त होने लगती है।

ग्रीष्म कालीन सब्जियाँ पोषक तत्वों से भरपूर होती है। करेला एक गुणकारी सब्जी है। इसमें लोहा और विटामिन प्रचुर मात्रा में पाया जाती है। इसे छोटे–छोटे टुकड़ो में काटकर, सुखाकर बेमौसम में सब्जी के एवं में उपयोग किया जाता है और साथ ही मधुमेह के रोगी के लिए लाभदायक होता है। खरबूजा एक पौष्टिक और पूर्ण आहार है। जिसमें विटामिन ए, बी, सी प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। कब्ज के रोगियों के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है। परवल की सब्जी मूत्रवर्धक और दस्तावर होती है। इसके अलावा मस्तिष्क हृदय और रक्त संचार के लिए भी लाभदायक होती है। रोगियों के लिए यह अमृत का कार्य करती है। परवल के तने का काढ़ा बलगम और खाँसी में लाभप्रद होता है । लौकी के गूदे से विभिन्न प्रकार की दवाएं बनाई जाती हैं और पेठा भी बनाया जाता है । लौकी का प्रभाव ठण्डा होता है । लौकी सुपाच्य होने के कारण ही विभिन्न रोगों में इसको सेवन की सलाह भी दी जाती है । अतः कद्दू वर्गीय सब्जियाँ स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होती हैं।

कद्दू वर्गीय सब्जियों को परिरक्षित करके लाभ कमाया जा सकता है। खरबूजा के गिरियों को पीसकर ग्रीष्म कालीन पेय पदार्थ बनाया जाता है। इसकी गिरियो को मिठाई में भी डाला जाता है। ऐश गार्ड (Ash Gourd) के पके फल से आगरा का पेठा बनाया जाता है जो पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। इस प्रकार से ग्रीष्म कालीन सब्जियों से विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थ–मिठाईया व पेठा बनाकर देशी और विदेशी मुद्रा आर्जित की जा सकती है।

दियारा लैण्ड से तात्यर्प यह है कि नदियों के किनारे की मृदा जो ग्रीष्म ऋतु में खाली जमीन हाती है और अन्य ऋतुओं में वर्षा और शरद में पानी भरा रहता है। इस प्रकार की मृदा पर जब खेती करते है तो उसे दियारा लैण्ड खेती कहते है। वर्षा ऋतु में नदियों में जब पानी ऊपर चढ़ता है और ग्रीष्म ऋतु में पानी उतर जाता है नदियों के किनारे ऊपर भाग में कार्बनिक पदार्थ छूट जाता है। और इस प्रकार की मृदा में नदियों के किनारे मुख्यतया कद्दू वर्गीय सब्जियों की खेती करते है। सिंचाई के लिए घड़े में पानी भरने से ही सिंचाई करते है। अतः इस प्रकार की भूमि में किसी प्रकार की कोई लागत भी नही लगती और सिंचाई में कोई खर्च नही होता । इस प्रकार के जमीन का लाभ केवल ग्रीष्म ऋतु की कद्दू वर्गीय फसलों को प्राप्त होता है।

कम लागत में फसल सुरक्षा

डॉ0 प्रदीप कुमार*, डॉ0 कौशल कुमार एवं डॉ0 राम जीत**

*वैज्ञानिक, फसल सुरक्षा, वैज्ञानिक/**प्रो0 कृषि अभियंत्रण एवं वारिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष
कृषि विज्ञान केन्द्र, पांती, पोस्ट मंशापुर, अम्बेडकर नगर–224168, (उ.प्र.)

वर्तमान परिवेश में फसलों के नाशी जीव (रोग,कीट,सूत्रकृमि,चूहा आदि)के बारे में कृषकों व प्रक्षेत्र महिलाओं में तकनीकी ज्ञान का अभाव मूल कारण है। फसल सुरक्षा में प्रयुक्त प्रक्रियाओं सहित जीवनाशी प्रयोग की गलत विधियों के इस्तेमाल से फसल लागत बढ़ना स्वभाविक है। साथ ही, कृषि रक्षा रसायनों का अधिक व अनियन्त्रित प्रयोग पर्यावरण श्रंखला के लिए गम्भीर समस्या है अर्थात् फसलों की गिरती पोषण गुणवता, उत्पाद, स्वाद तथा उत्पादन/उत्पाद में आहार परिसीमन से अधिक रसायन अवशेष के कारण मानव, पशु–पक्षी, वनस्पति (पेड़–पौधे/फसलें) तथा पर्यावरण (जल, जमीन, जंगल) सभी का स्वास्थ्य असुरक्षित है और अनेक समस्याएं परिलक्षित है।

1. मंहगे कृषि रक्षा रसायनों के लगातार व अन्धाधुन्ध प्रयोंग से बढ़ती फसल लागत तथा निरन्तर घटता लाभ ।
2. रोग,कीट, खरपतवार,व अन्य नाशीजीवों पर रसायनों का कम प्रभाव या निष्प्रभाव तथा बढ़ती सहनशीलता से जैव विविधता को अधिक खतरा ।
3. रसायनों के प्रयोग सें प्रदूषित खाद्यपोषण से प्रतिदिन बढ़ती बीमारियों एवं जन्तुओं व वनस्पतियों का गिरता स्वास्थ्य ।
4. खराब गुणवत्ता के अनाज, दलहन, तिलहन, फल व सब्जियाँ खाद्य सुरक्षा एवं पोषण सुरक्षा में बाधक। साथ ही, विश्व में कृषि निर्यात हेतु रसायन अवशेषयुक्त खाद्य उत्पाद अमान्य।
5. मिट्टी व पर्यावरण में बढ़ता रसायनिक प्रदूषण तथा जीव हानि से पर्यावरण श्रंखला को खतरा।

उपरोक्त वर्णित कृषि रक्षा रसायनों के दुष्परिणमों एवं निरन्तर गतिशील मानव, पशु–पक्षी पेड़–पौधे वनस्पतियों तथा जीवित भूमि में सूक्ष्म जीव के स्वास्थ्य में दिन प्रति दिन गिरावट चिन्ता का विषय है। अतः पर्यावरण सन्तुलन के बिना सम्पूर्ण समाज का विकास असम्भव है। जिसके पूर्ण समाधान के लिए एकीकृत नाशी जीव प्रबन्धन अपनाना आवश्यक है। अर्थात फसल सुरक्षा में प्रयुक्त

उन्नत शस्य क्रियाओं में परिवर्तन लाना, यान्त्रिक विधियों का प्रयोग, वनस्पतिक व जैविक उत्पादों का अधिक से अधिक उपयोग तथा अपरिहार्य परिस्थितियों(आर्थिक क्षति स्तर से अधिक हानि) में रसायन प्रयोग द्वारा प्रभावी नाशीजीव प्रबन्ध अपनाना चाहिए। जिसका ध्येय किसी नाशीजीव को उनकी हानि पहुँचाने वाली संख्या/घनत्व को सीमित रखा जाना है। साथ ही फसलों का निरन्तर सर्वेक्षण,निरीक्षण द्वारा निगरानी करना भी जरूरी है ताकि कृशकों/कृषकों महिलाओं व कृषि प्रसार कार्यकत्ताओं को शत्रु कीट व मित्र जीवों सहित फसल रोग आदि को वास्तविक स्थिति का ज्ञान सुनिश्चित हो सके और समस्याओं को पहचानने व उससे सम्वन्धित फसल प्रवन्धन की सही समझ विकसित हो सके एवं समय से पहले फसल सुरक्षा कार्य योजना बनाना सम्भव हो सकें। हमेशा उपचार से बचाव की कारगर पद्धति का विकास सुनिश्चित हो।

क्या है एकीकृत नाशी जीव प्रबन्ध? –जीव–जगत में सम्पूर्ण जीव समुदाय (जन्तु व वनस्पति)के स्वास्थय व विकास के लिए उचित कृषि उत्पादन प्रकियाओं एवं जैव उत्पादों व वनस्पतिक उत्पादों तथा यान्त्रिक विधियों को अपना कर हानिकारक नाशीजीवों (रोग,कीट,सूत्रकृमि, चूहा व भण्डारण रोग कीट आदि) को आर्थिक हानि स्तर से कम रख कर नियंत्रण ही (एकीकृत नाशी जीव प्रबंधन कहलाता है। साथ ही, अपरिहार्य परिस्थितियों (आर्थिक स्तर से अधिक नुकसान की स्थिति में) रसायनिक जीवनाशी का बदल– बदल कर सही समय पर उचित विधि से निंयन्त्रित मात्रा में ही प्रयोग करना होता है।

नाशीजीव नियंत्रण क्यों नही? दशकों से नाशी जीव नियंत्रण में जब सस्ती, सरल व अनुपयुक्त कृषि उत्पादन तकनीकी का समावेश, एकल फसल उत्पादन व फसलचक्र का लगातार प्रयोग तथा यान्त्रिक विधियों के प्रयोग में तकनीकी ज्ञान को कमी सहित फसल निगरानी में शत्रु–कीट व मित्र–जीव असंतुलन होना एवं रसायनिक जीवनाशियों के प्रयोग का ही अन्धाधुन्ध प्रयोग होने लगा जिससे न सिर्फ वातावरण प्रदूषण व जन्तुओं (मानव,पशु–पक्षी) तथा वनस्पति (पेड़–पौधे) की दुर्घटना का भय होता है बल्कि रसायनों के लगातार प्रयोग से नाशीजीवों में उनके विरूद्ध अवरोध पैदा होता है अर्थात सहनशक्ति–सहनशीलता बढ़ती जाती है और खेत एवं वातारण में उपस्थित परजीवी/परभक्षी मित्र–जीव रसायनों के प्रयोग से शत्रु कीट की भाति स्वतः नष्ट हो जाते है।इसके अतिरिक्त रसायानिक जीवनाशी के अवशेष खाघान्न में फल सब्जी आदि खाद्य उत्पादों में अवशेष रह जाते है जो उपभोक्ता के स्वास्थय के लिये हानिकारक होते है। वास्तव में रसायानिक उत्पादों से नाशी जीव नश्ट नही होते बल्कि बढ़ती सहनशीलता से ये फसलों में और

अधिक हानिकारक होते जाते है जिससे नाशी–जीव सुनिश्चित नही हो पाता हैं। अतः रसायानिक नियंत्रण नाशी–जीव प्रबन्धन का एक मात्र विकल्प न होकर एक अंग हो सकता है इसीलिए रसायनों द्वारा नाशी–जीव नियंत्रण प्रक्रिया को विराम देना पड़ा। अतः फसलोत्पादन में नाशी जीव समस्या निदान के लिये केवल एक तरीके को अपनाने के स्थान पर प्रभावी कई साधनों का समन्वित कारक अपनाया गया। यही एकीकृत नाशी जीव प्रबन्ध पद्धति हैं।

कैसे करें एकीकृत जीवनाशी जीव प्रबन्ध?

फसलोत्पादन में नवविकसित रोग कीट अवरोधी उन्न्त प्रजातियों का चयन लाभकारी सस्य क्रियाओं को अपनाना या बदल कर प्रयोग करना, याँत्रिक विधियों का प्रयोग, कानून व संगरोध प्रक्रिया का सुनिश्चित पालन (स्वस्थ बीज व पौध प्रमाणीकरण) वानस्पतिक उत्पादों का अधिकतम उपयोग तथा जैविक जीवनाशी प्रबन्ध और अन्तिम विकल्प के रूप में कृषि रक्षा रसायनों कों सुरक्षित व प्रस्तुत प्रयोग के मिले जुले तरीकों से नाशीजीव प्रबंध किया जाता है। इस पद्धति में निम्न प्रक्रियाओं विधियों को अपनाया जाता हैः–

1. फसल का (एक निश्चित अन्तराल पर) निरन्तर सर्वेक्षण व निरीक्षण से (निगरानी) करना।
2. फसल सुरक्षा कार्यकर्ताओं तथा किसानो व प्रक्षेत्र महिलाओं को शत्रु कीट (हानिकारक जीव) सहित मित्र कीट (लाभदायक परभक्षीव परजीवी सूक्ष्म जीव) के पहचानने व उनकी हानिकारक अवस्था से सम्बन्धित ज्ञान का विस्तार करना होना चाहिए।
3. जैविक संसाधनों जैसे परभक्षी कीट, परजीवी विभिन्न मित्र फफूँद, जीवाणु, विषाणु और अन्य जीव जन्तु (पशु पक्षी व वनस्पति) का प्रक्षेत्र में उचित संरक्षण तथा प्रयोगशाला में उत्पादन करकें जीवों को फसल व भूमि में सुरक्षित प्रयोग से जीवनाशीयों का निदान करना तथा वानस्पतिक उत्पाद/जैविक जीवनाशी का अधिक से अधिक प्रयोग हेतु व्यापक प्रचार प्रसार करना।
4. खेती को कम खर्चीला और अधिक लाभकारी बनाने के लिये नव विकसित फसल व प्रजाति के विकास सहित उन्नत प्रमाणित बीजो की उपलब्धता सुनिश्चित करना,उर्वरकों का सही ढंग से उपयोग, उपयुक्त जल प्रबंध (नियंत्रित व हल्की सिचाई अथवा फसल में जल भराव होने पर सुनिशिचत जल निकास) अपनाना।
5. रसायनिक जीव नाशी का प्रयोग केवल अपरिहार्य स्थिति में उस समय किया जाय जब नाशी जीव संख्या/घनत्व आर्थिक स्तर से अधिक हो/अन्यथा, शेष विधियों को अपनाकर

नाशी–जीव को सीमित स्तर तक रखा जाये।

6. फसल सुरक्षा में जो साधन एवं विधियां अपनायी जाय वे न केवल प्रभावी हो बल्कि कम खर्चीली भी हो तथा लम्बी अवधि तक उपयोगी सिद्ध हो सके।

7. ऐसी नाशीजीव प्रवन्धन में पद्धति/विधि का प्रयोग अधिक सफल होता है जो पर्यावरण , भूमि तथा फसल के वातावरण को प्रदूशित होने से बचाने में सक्षम हो। इसके अर्न्तगत सुरक्षित जैव रसायन प्रयोग एक अपवाद हो सकता है क्योकि जीव रसायनों का प्रभाव अधिक अवधि तक ही कारगर होता है और पुनः प्रयोग नाशीजीव की प्रकृति व संख्या–घनत्व अथवा रोग–तीव्रता पर आधारित उपाय है।

(क) शस्य क्रियाओं का प्रयोगः नाशी जीवों के प्रबंध में ऐसी विधि/तकनीकी अपनाना जिससे पर्यावरण सुरक्षा के साथ साथ कम से कम कृषि रक्षा रसायनों के प्रयोग की संस्तुति से फसल सुरक्षा सुनिश्चित हो।

1. गर्मी की गहरी जुताई करने से मिट्टी में उपलब्ध हानिकारक कीटों तथा रोगों की सुप्तवस्थाएँ तेज धूप से नष्ट हो जाती है।

2. खेत की साफ सफाई करना अर्थात खेत में पुराने पौधे फसल अवशेश व खरपतवारों की सफाई एवं चक्रीय उपयोग जिससे मेढ़ व खेत में उगी हुई घासें तथा खरपतावार नाशी–जीव को संरक्षण प्रदान न कर सके इसके लिये फसल में उचित निराई गुणई अपनाना चाहिए।

3. फसलचक्र को सुनिश्चित क्रियान्वयन अपनाना ताकि नाशी–जीवों का जीवन चक्र टूट जाये और उनका अगली पीढी में प्रभाव कम हो।

4. नाशीजीव प्रतिरोधी व सहनशील फसलों के चुनाव के साथ ही नव विकसित प्रजाति के स्वस्थ बीजों का वुवाई में प्रयोग।

5. बीज शोधन, भूमि शोधन, व पौध स्वास्थ्य चिकित्सा को अपनाना/अंगीकरण।

6. उचित समय पर बुवाई/रोपाई से बुवाई/रोपाई विलम्ब का परित्याग करना क्योकि देर से बोई जाने वाली फसल पर रोग कीट प्रकोप अपेक्षाकृत अधिक होता है।

7. पोधों से पौधों की उचित दूरी बनाये रखना तथा यथा सम्भव पक्तियों में निर्धरित दूरी रखते हुये पौध दूरी को प्रोत्साहन देना ताकि फसल पर अधिकाधिक सूर्य का प्रकाश रहे और नाशीजीवों का आक्रमण/हानि कम से कम परिलक्षित हो।

8. जैविक खाद सूक्ष्म तत्व जैव उर्वरक का यथोचित मात्रा में मृदा परीक्षण के आधार पर प्रयोग करके उत्तम फसल पोषण सुनिश्चित करना।

9. पानी का समुचित प्रबन्ध करना अर्थात हल्की व नियंत्रित सिचाई का परिपालन जिसके अर्न्तगत टपक सिंचाई या बौछारी सिंचाई अपनाना चाहिए। खेत में अधिक पानी भर जाने की स्थिति में जल निकास प्रबन्ध अपनाना चाहिए।

10. फसल की कटाई जमीन के स्तर पर बिल्कुल सतह से करना चाहिए। कम से कम फसल अवशेष खेत में छोड़ना चाहिए।

11. सम्पूर्ण फसल अवधि के दौरान खेत की निगरानी अवश्य करना चाहिए जिससे शत्रु–जीव व मित्र–जीव का आकलन सुनिश्चित हो सके तथा शत्रुःमित्र अनुपात 2:1 होने पर जैविक नियंत्रण स्वतः हो जाता है। इसमें रोग व कीट प्रबन्ध के लिये वैज्ञानिक परिणामों पर आधारित /निर्धारित व उपयुक्त यंत्र/विधि का प्रयोग किया जाता है।

(ख) यांत्रिक विधियों का प्रयोगः नाशी–जीवों के अण्डे बच्चे और सुड़ियों (लारवा) तथा रोग ग्रसित पौंधों का भाग या पूरा ग्रसित पौधा को एकत्र कर नश्ट करना आदि इसमें अनेक विधियाँ कारगर सिद्ध हुयी है जिन्हें अपनाने से नाशी जीव सुरक्षा सुनिश्चित होती है जो निम्नवत हैः

1. खड़ी फसल में हानिकारक कीट की सुप्तावस्था व सुड़ियों अण्डों की रोकथाम के लिये चिडियां का बैठका (बर्ड परचर) लगाना जिससे परभक्षी चिड़ियाँ हानिकारककीटों को खाकर नष्ट करती है। जैसे गौरैया, बगुला, गिद्ध, मुर्गियाँ, बत्तख, बाज आदि।

2. रोग ग्रासित/कीट प्रभावित पौधों के हिस्से को अलग करके नष्ट करना चाहिए जिससे रोग व कीट प्रसार पर विराम लगाया जा सके।

3. प्रकाश प्रपंच(लाइट ट्रैप) का प्रयोग अर्थात तेज प्रकाशयुक्त लालटेन, बिजली का बल्ब या टूयूब या साइकिल टायर से शाम अथवा रात भर उजाला करके प्रकाश प्रपंच के चारों ओर पानी भरकर रखते है जिससें कीट आकर्षित होकर पानी में मिले कीटनाशक खनिज तेल (कैरोसीन) के प्रभाव से मर जाते है।

4. फसल पर स्पष्ट परिलक्षित कीटों को स्वीप नेट से पकड़कर नष्ट करना।

5. गन्ध प्रपंच (फेरोमोन ट्रैप) का उपयोग अर्थात हानिकारक कीट विशेषकर तना व फल छेदक कीट (लैपिडोंप्टेरा वर्ग) के नर–मादा गन्ध के प्रपंच में फँस जाते है और अगली पीढी

में प्रकोप कम हो जाता है। तना छेदक, अंकुर भेदक, चोटी भेदक, फली भेदक, व फल भेदक कीट नियत्रण की यह प्रभावी विधि है जिसमें कीट विशेष की मादा गन्ध के लयूर को प्रयोंगशाला में उत्पादन के पश्चात फसल की पत्तियों अथवा तने में लगाकर कीट आर्कषण द्वारा पकड़कर एकत्र कर मार दिया जाता है यह विशेष लयूर जाड़े में 15 दिन तथा गर्मी में 10 दिन अन्तराल पर पुनः गन्ध प्रपंच में स्थापित करते रहना चाहिए।

6. **वनस्पति उत्पादों का उपयोगः** पेड़–पौधे जिनकी पत्तियाँ स्वाद रहित व कड़वी होती है ये रोगाणु व कीटाणु के लिये अरूचिकर, कीट अण्डो के प्रतिरोधक व कीटो के लिये वृद्वि निरोधक तथा कीट बन्धयाकरण में प्रयुक्त होते है ऐसे उत्पाद नीम आधारित, तम्बाकू आधारित, लहसुन व मिर्च आघारित तथा अन्य वनस्पति जैसे–वकाइन, सत्यानाशी, धतूरा, मदार, कांग्रेस घास लैण्टाना कैमरा घास कनेर, भांग, बिच्छू घास (पहाडों पर उपलब्ध) आदि का रोग–नाशी व कीट नाशी के रूप में उपयोग तथा गेदा को सूत्रकृमि नाशी के रूप में प्रयोग करते है। इसके अर्न्तगत नीम उत्पादों जैसे नीम तेल, निबोली, नीम की खली व पत्तियाँ छाल व लकडी, नीम का चूर्ण तैयार करके कीट, रोग व सूत्रकृमि से सुरक्षा करते है इसीलिए नंत्रजन उर्वरक को नीम लेपित यूरिया केरूप में किसानों को उपलब्ध कराते है तकि फसल में रोग कीट प्रबन्धन सुनिश्चित हो सके। साथ ही , यूरिया का नाइट्रेट के रूप में पानी में घुलकर भूमि में जाना लीचिंग अथवा अमोनिया के रूप में वाष्प बनने से रोका जा सके तथा उर्वरक फसल पोषण में अधिक उपयोगी परिलक्षित हो।

7. **तरल कीट नाशक तैयार करनाः** वनास्पतिक अवशेष जैसेः पौधों के तना जड़ व पत्तियों आदि को गौमूत्र व गाय गोबर साहित पानी में सड़ाकर सत् निकाल लेते है इस कीट नाशक की गुणवत्ता को बढाने के लिये स्थानीय पेड़ पौधों के कड़वे भागों को ही उपयोग मे लाना उपयुक्त है जैसे नीम, वकाइन, धतूरा, सत्यानाशी, कनेर, भांग, विच्छू–घास कांग्रेस घास, कैमरा लैण्टाना आदि ।

विधिः एक प्लास्टिक ड्रम (250 लीटर धारिता) को ढक्कन रहित अथवा आधा ढक्कन सहित प्रयोग में लाते है जिसमें गाय का गोबर, 10 कि0ग्रा0 गौमूत्र, 10 लीटर तथा कड़वी वनस्पति 10 किग्रा कवड़े जहरीले स्थानीय पेड़–पौधों के भाग तथा अवशेष जैसे–नीम, धतूरा, वकाइन, सत्यानाशी, मदार, कनेर, गाँजा–भाँग, लैण्टाना, कैमरा, पारथेनियम कॉंग्रेस घास विच्छू घास सिर्फ पहाडों पर उपलब्ध को तरल घोल के रूप में गौमूत्र व गाय के गोबर के साथ

पानी में सड़ाकर सत् निकाल लेते है। तैयार सत् को छानकर प्लास्टिक ड्रम में रखते हैं अथवा शीघ्र ही पानी में मिलाकर 1:4 अथवा 1:5 अंश रोगनाशी/कीटनाशी कम रूप में फसल सुरक्षा हेतु उपयोग में लाते है। इस तरल घोल का प्रयोग रोगकीट के प्रकोप पर आधारित होता है जिसको उचित अन्तराल पर छिड़का जाता है। यह फसल तथा नाशीजीव प्रकृति पर आश्रित प्रक्रिया है और जैविक खेती में आवश्यक उपाय है।

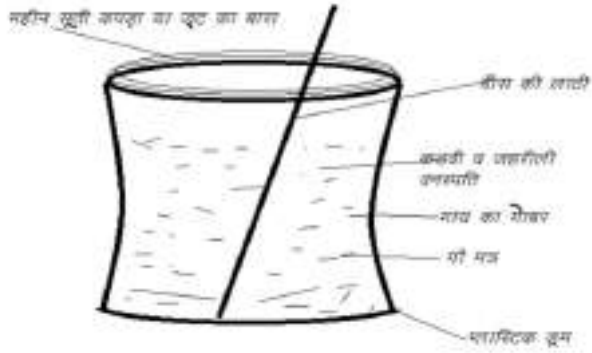

(प्लास्टिक ड्रम में तरल कीटनाशक तैयार करना)

या अधिक (आवश्यकतानुसार गाढा सत् तैयार करने के अनुसार)डालते है तथा एक बाँस की लाठी सुबह शाम घोल मिलाने के लिये ड्रम में रखते है। तत्पश्चात ड्रम को छायादार स्थान पर रखते है और ड्रम के मुँह पर साफ महीन कपड़ा या जूट के बोरा से ढक देते है इस मिश्रण घोल को सुबह–शाम लाठी या डण्डा की सहायता से मिलाते रहना चाहिए ताकि मिश्रण घोल ठीक से सांद्रित बने। तरल कीटनाशक तैयार होने में 8 सप्ताह लगते है। अर्थात दो माह लगते हैं। इसको सूती कपड़े से छानकर चार या पांच गुना पानी मिलाकर छिड़काव –घोल तैयार किया जाता है जिसको रोग व कीट नियंत्रण हेतु सुबह–शाम छिड़काव करना उपयोगी होता है। रोग–कीट प्रकोप व बचाव के लिये तरल कीटनाशक का छिड़काव 7 से 10 दिन अन्तराल पर करना चाहिए। सुनिश्चित फसल सुरक्षा के लिए स्थानीय परिस्थिति के अनुसार घोल छिड़काव का अन्तराल घटाया–बढ़ाया जा सकता है।

(घ) **जैविक प्रबन्धः** इस पद्धीत में नाशी जीवों को उनके विशिष्ट जैव अभिकर्ता बाया एजेन्ट व जैविक कीटनाशी बायो पेस्टीसाइड के प्रयोग द्वारा प्रबन्धन करते है। यह सबसे सरल, सस्ता व

सुरक्षित तरीका है परन्तु प्रयोगकर्ता (कृशक व परिक्षेत्र महिला) शत्रु – जीव व मित्र –जीव की निगरानी का ज्ञान आवश्यक है। ये जैविक जीवनाशी उत्पाद खेत में उपलब्ध हो सकते है यदि कुछ वर्षों से रसायनों का प्रक्षेत्र में प्रयोग न किया गया हो अथवा प्रयोगशाला में तैयार करके बाहर से मित्र–जीवो तथा सूक्ष्म जीवों को छोड़ा जाता है। ये जीव दो प्रकार के होते हैः

1. **जैव अभिकर्त्ता (बायोऐजेन्ट)** : ऐसे मित्र सूक्ष्म जीव (फफूँद, जीवाणु, विषाणु) के शुद्ध टीके (कल्चर) प्रयोगशाला में तैयार किये जाते है जिनको जैविक खाद मे मिलाकर नम भूमि में प्रयोग करके संरक्षित करते है जैसे ट्राइकोडर्मा विरडी ट्राइकोडर्मा हरजियेनम, एस्परलिस नाइजर (मूंगफली के तना सड़न व झुलसा आदि से फसल मे प्रतिबंधित) आदि से रोग पैदा करने वाली फफूद जैसे उकठा,जड़सडन जनित बचाव के लिये प्रयोग करते है। जीवाणु,(स्यूडोमोनास फ्लोरेसेन्स) से अनेक जीवाणु उकठा व फल सड़न रोग से बचाव सम्भव होता है।
2. **जैविक कीटनाशी (बायोपेस्टीसाइड)** : भूमि शोधन व फसल पर चिपका कर छिड़काव में प्रयोग किये जाते है

परजीवी (1) ट्राइकोग्रामा प्रजाति के अण्ड़ो को पर 10000 प्रति कार्ड की दर से लगाकर प्रयोगशाला में तैयार करके कृषकों को उपलब्ध कराया जाता है जो अण्डा परजीवी होता है।

परजीवी (2) ततैया (ब्राकोन) : इसके प्रौढ़ हैलिको वर्ग अर्मीजेरा (चनाफली छेदक) अण्ड़ा में अपने अण्डे देती है ओर जिनसे ततैया निकलकर फलीछेदक अण्डों को नश्ट करते है।

3. परभक्षी (प्रीडेटर) : चिड़िया,कौआ,मैना मोर,गौरैया,मक्डिया,परभक्षी भ्रंग सिरफिड़ मक्खी ट्राइसोपा इन्द्रगोपभृग।

4.कीटो के रोग कारक : एनपीवी विषाणु कल्चर बैसीलस थ्यूराजिनेसस (डीटी जीवणु कल्चर) मेटाराइजियम ऐनीसोप्ली (फफूद कल्चर) से दीमक प्रबन्ध वाइबेरिया वेसियाना (फफूद कल्चर) से बंधक कीट प्रबन्ध व सफेद गिडार प्रबन्ध।

कार्यक्रम संख्या – 1

डॉ0 गोपाल पाण्डेय स्मृति व्याख्यान माला सम्पन्न

सोसाइटी ऑफ बॉयलाजिकल साइंसेज एण्ड रुरल डेवलपमेंट, इलाहाबाद में दिनांक 27 जुलाई, 2018 को डॉ0 गोपाल पाण्डेय स्मृति व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में सभी अतिथियों का स्वागत एवं कार्यक्रम की जानकारी डा0 हेमलता पन्त, सचिव एस0बी0एस0आर0डी0, इलाहाबाद ने दी। इस कार्यक्रम के मुख्य व्याख्यानदाता डा0 जितेन्द्र नागर, राष्ट्रीय महासचिव, इनवायरानमेंट एण्ड सोशल डेवलपमेंट एसोसिएशन (इसडा), नई दिल्ली थे। डा0 नागर ने वायु प्रदूषण एवं मानव स्वास्थ्य पर अपना व्याख्यान देते हुये बताया कि देश के महानगरों में वायुप्रदूषण का स्तर सामान्य से खतरनाक स्थिति में पहुँच गया है जो आगे आने वाले समय में और भयावह हो सकता है। इसके कारण लोगों में कैंसर, अस्थमा, श्वास रोग आदि फैल रहे हैं। अतः हम सभी को अधिक से अधिक वृक्षारोपण करना चाहिए तथा पेड़ों को काटने से बचाना चाहिए। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता डा0 विभा मिश्रा, संयुक्त निदेशक, सूक्ष्म एवं लघु उद्योग (भारत सरकार) ने की। डा0 विभा मिश्रा ने भी उद्योगों से होने वाले प्रदूषण तथा उनके निदान की चर्चा की तथा अधिक से अधिक पेड़ों को लगाने की बात कहीं एवं आम लोगों तक प्रदूषण होने के कारण व उनके निस्तारण हेतु जन जागरुकता अभियान चलाने को कहा।

इस कार्यक्रम में डा0 अनुश्री श्रीवास्तव ने संचालन तथा धन्यवाद ज्ञापन डा0 देवेन्द्र स्वरुप पशु वैज्ञानिक, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर ने की। इस कार्यक्रम में मंचासीन अतिथियों द्वारा डा0 हेमलता पन्त एवं डा0 मनोज कुमार सिंह द्वारा लिखित पुस्तक 'मानव में होने वाले प्रमुख रोग व उनका निदान' तथा डा0 हेमलता पन्त, डा0 डी0के0 श्रीवास्तव, डा0 प्रीति सिंह, डा0 डी0 स्वरुप तथा डा0 कमलेश सिंह द्वारा संपादित पुस्तक 'इमर्जिंग ट्रेन्ड्स इन एग्रीकल्चर, इनवायरानमेंटल एण्ड न्यूट्रिशनल टेक्नॉलाजी का विमोचन भी किया गया। इस कार्यक्रम में डॉ. नागर को 'डॉ. गोपाल पाण्डेय स्मृति पुरस्कार' से सम्मानित भी किया गया ।

कु0 हर्षिता पन्त
सहायक पुस्तकालय प्रभारी
एस.बी.एस.आर.डी., प्रयागराज (उ.प्र.)

कार्यक्रम संख्या – 2

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का शुभारम्भ

सोसाइटी ऑफ बॉयलाजिकल साइंसेज एण्ड सरल डेवलपमेट, प्रयागराज के तत्वाधान में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठीः **कृषि, पर्यावरण व तकनीकी में नवाचारों द्वारा सम्मिलित विकास** का शुभारम्भ विज्ञान परिषद, प्रयाग के सभागार में दिनांक 17 मार्च, 2019 को शुरू हुआ। इस इसमं अतिथियों का स्वागत डॉ. एस.सी. पाठक, पूर्व महाप्रबन्धक, नाबार्ड, मुम्बई ने किया । संगोष्ठी के विषय पर पूरी जानकारी डॉ. हेमलता पन्त, सचिव, एस.बी.एस.आर.डी., प्रयागराज द्वारा दी गयी । सत्र के अतिथि डॉ. बृजेश कुमार, प्राचार्य सी.एम.पी. डिग्री कालेज, प्रयागराज ने कृषि व पर्यावरण में हो रहे नव प्रवर्तनों पर विस्तृत चर्चा की । डॉ. सुनील कान्त मिश्रा, वित्त अधिकारी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज ने कहा कि तकनीकी एवं नवाचारों का प्रयोग पूरे चिन्तन व सोच विचार के बाद ही अपनाना चाहिए । जिस तकनीक का प्रयोग जिस स्थान पर हो वहीं उसका प्रयोग करना चाहिए कार्यक्रम के की – नोट स्पीकर प्रो0 कृष्ण कुमार, जन्तु विज्ञान विभाग, इलाहाबााद विश्वविद्यालय ने समेकित कीट प्रबंधन पर चार्च करते हुए कहा कि सभी को रासायनिक कीट नाशकें के स्थान पर जैव कीट नाश्कों व विभिन्न औषधीय पौधों से निर्मित कीटनाशको का प्रयोग करना चाहिए।

कार्यक्रम के अतिथि डॉ. मनबोध प्रसाद, प्राचार्य एम.एल.एन.एफ.टी.आई., कोर्डेट, इफको, फूलपुर ने विभिन जैव उर्वकों, नीम कोडेट यूरिया, सागरिका, बायो नैनो पर विस्ततृत चर्चा की ।

कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ. तन्मय रूद्रा, सी.आई.यू., नई दिल्ली ने की । कार्यक्रम में डॉ. नितिन कौशल, डॉ. ए.के. पाण्डेय का आमंत्रित व्याख्यान दिया एवं कई शोधार्थियों ने अपने शोध पत्र भी प्रस्तुत किये । कार्यक्रम का संचालन डॉ. ज्योति वर्मा, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. कालेज, प्रयागराज एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. देवेन्द्र स्वरूप, पशु वैज्ञानिक, सी.एस.ए. कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर ने किया ।

समापन

सोसाइटी ऑफ बॉयलाजिकल साइंसेज एण्ड सरल डेवलपमेट, इलाहाबाद के तत्वाधान में दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठीः **कृषि, पर्यावरण व तकनीकी में नवाचारों द्वारा सम्मिलित विकास** का समापन विज्ञान परिषद, प्रयाग के समाचार ने दिनांक 18 मार्च, 2019 को सम्पन्न हुआ। इस संगोष्ठी में सभी अतिथियों का स्वागत डॉ. एस.सी. पाठक, पूर्व सी.जी.एम. नाबार्ड द्वारा किया गया। संगोष्ठी की दो दिवसीय रिपोर्ट डॉ. हेमलता पन्त, सचिन, एस.बी.एस.आर.डी., इलाहाबाद ने प्रस्तुत की। समापन समारोह की मुख्य अतिथि प्रो0 अनिता गोपेश, अध्यक्षा जन्तु विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद ने अपने सम्बोधन में कहा कि यूंहि हम विकास की अंधाधुंध दौड़ में अपनी प्रकृति से छेड़छाड करेंगे तो आगे आने वाली हमारी पीढ़ियों के लिए बहुत परेशानी होगी। नवाचार व तकनीकी द्वारा विकास अच्छा है, जरूरी भी है पर प्रकृति को भी बचाना, जैवविविधता को बनाये रखना भी उतना ही आवश्यक है। समारोह की अतिथि डा0 विभा मिश्रा, संयुक्त निदेशक, एम.ई.एम.एस. (भारत सरकार) ने उद्योगों में हो रहे नवाचार न नवीन तकनीकी के विषय में जानकारी दी। इस कार्यक्रम के तकनीकी सत्र में डॉ0 पवन झा, पर्यावरण विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (इलाहाबाद), डॉ0 रीना लॉरेन्स, जैव रसायन विभाग, शुआट्स, इलाहबाद तथा डॉ0 ए0के0 सिंह, पादप रोग विज्ञान विभाग, शेरे काश्मीर कृषि एवम् तकनीकी विश्वविद्यालय, जम्मू का आमंत्रित व्याख्यान हुआ। संगोषठी में 50 से भी अधिक शोध पत्रों का मौखिक व पोस्टर के माध्यम से प्रस्तुतिकरण हुआ। समारोह में प्रो0 के0पी0 सिंह, जन्तु विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (इलाहाबाद) डॉ0 एस0पी0 वर्मा, डॉ0 ए0के0 वर्मा0 डॉ0 एन0 पिल्लो डॉ0 ज्योति वर्मा, डॉ0 आर0के0 दुबे, प्रो0 बी0 पाल, डॉ0 अखिलेश चन्द्र मिश्र, डॉ0 विपिन कुमार सहित कई अन्य बैज्ञानिकों व प्राध्यापकों को सम्मानित किया गया। समापन समारोह में शोध पत्रों के प्रस्तुतीकरण के बाद कई शोधार्थियों को पुरस्कार दिये गये। समारोह का संचालन डॉ0 डी0 स्वरूप, पशु वैज्ञानिक, चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवम् तकनीकी विश्वविद्यालय, कानपुर तथा धन्यवाद ज्ञापन पीयूष रमन पाण्डेय, सह कार्यकारी सचिव, एस0बी0एस0आर0डी0, इलाहाबाद द्वारा किया गया। कार्यक्रम में सौ से भी अधिक वैज्ञानिकों, प्राध्यापकों, शोधार्थियों व विद्यार्थियों की उपस्थिति रही।